योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

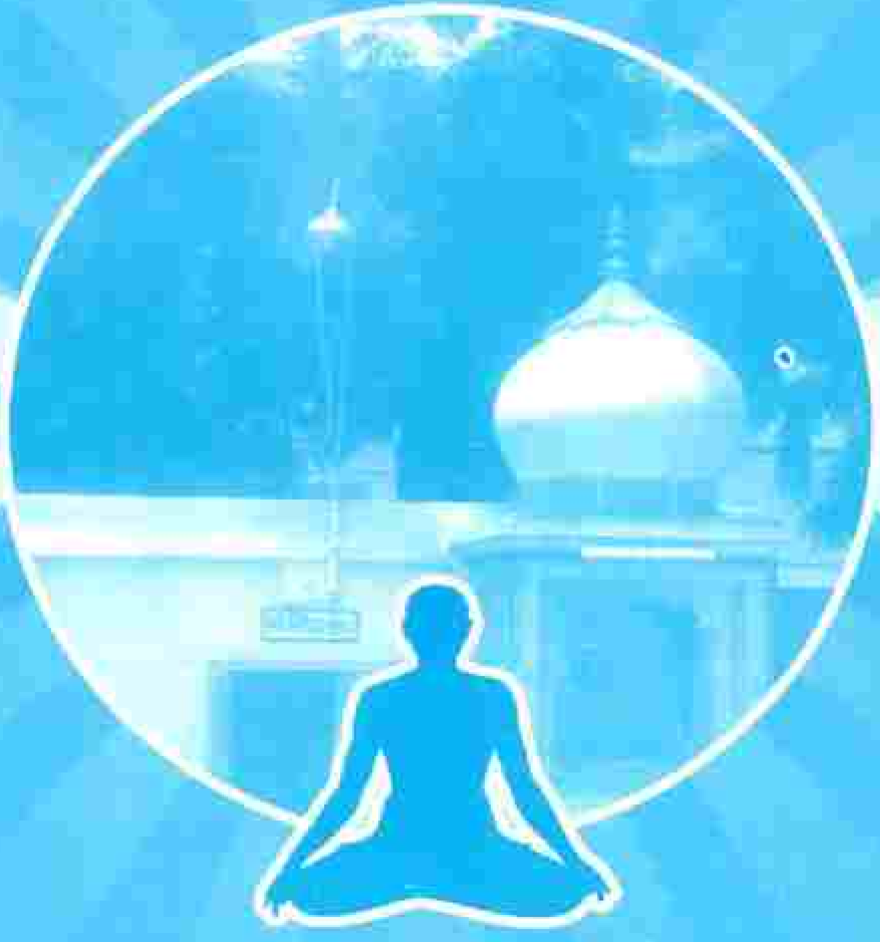

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 53 : अंक : 11-12
फरवरी-मार्च 2021

प्रकाशन तिथि : 01.03.2021

मूल्य – एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 360/-

अमृतकण

संस्कृतस्य हि दान्तस्य नियतस्य यतात्मनः।
प्राज्ञस्यानन्तरा सिद्धिरिहलोके परत्र च।।

जिसके वैदिक संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुए हैं, जो नियमपूर्वक रहकर मन और इन्द्रियों पर विजय पा चुका है, उस विज्ञ पुरुष को इहलोक और परलोक में कहीं भी सिद्धि प्राप्त होते देर नहीं लगती।

◆ ◆ ◆

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
जी वितशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति।।
अनन्तपारा दुष्पूरा तृष्णा दोषशतावहा।
अधर्म बहुला चैव तस्मातां परिवर्जयेत्।।

जब मनुष्य का शरीर जीर्ण होता है, जब उसके बाल पक जाते हैं और दाँत भी टूट जाते हैं; किन्तु धन और जीवन की आशा बूढ़े होने पर भी जीर्ण नहीं होती वह सदा नई ही बनी रहती है। तृष्णा का कहीं ओर-छोर नहीं है, उसका पेट भरना कठिन होता है। वह ढेरों दोषों को ढोये फिरती है। उसके द्वारा बहुत से अधर्म होते हैं; अतः तृष्णा का परित्याग कर दें।

◆ ◆ ◆

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्ति पैशुनम्।
दया भूतेष्व लोलुप्तवं मार्दवं हीरचयापलम्।।

मन, वाणी और शरीर से किसी भी प्रकार से किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण करना, अपने प्रति उपकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, कर्तापन का अहंकार न करना, अन्तःकरण की उपरति अर्थात् चंचलता, आसक्ति, क्रूरता आदि दुराचारी गुणों का अभाव होना आदि अच्छी आचार संहिता के लक्षण हैं।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 53 फरवरी–मार्च 2021 अंक : 11–12

पितासि लोकस्य चराचरस्य

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिम प्रभाव।।

अर्थात् – हे जगन्निवास! आप इस चराचर जगत के पिता हैं। आप गुरुओं के भी गुरु एवं पूज्य हैं। अप्रतिम प्रभाव वाले तीनों लोकों में आप के समान कोई नहीं है। फिर आप से बढ़कर और कोई कैसे हो सकता है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. **विशेष लेख**- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज 3
2. **सम्पादकीय** 11
3. **श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा**- डॉ. विजय सिंह 14
4. **जीवन में उपासना का महत्व**- पं. दामोदर सातवलेकर 17
5. **जीवन तत्व साधन और उसके नियम**- योगयोगेश्वर अनन्त श्रीचन्द्रमोहन जी महाराज 23
6. **कुण्डलनी महाशक्ति** 30
7. **विचारों की सृष्टि**- श्री विष्णुप्रसाद 'व्यास' 31
8. **भृगु-योग**- एक साधक 34

***

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख—

सच्चा अहिंसक कौन ?

(योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

योग मार्ग की उपासना में और संसार की अन्य उपासनाओं मे यही अन्तर है कि योग साधना में साधक साधना करता है किन्तु उसका लक्ष्य यह नहीं होता कि वह किसी देवी देवता की पूजा करके उनसे कोई वरदान लेना चाहता है। उसका लक्ष्य तो केवल मात्र इतना ही होता है कि वह अपने आपको उस तत्व में लय कर देना चाहता है जिसका वह ध्यान करता है। मैंने प्रातः काल गीता प्रवचन के समय भगवान के द्वारा अष्टधा प्रकृति का वर्णन किया था। भगवान के शब्दों में—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

ये आठ प्रकृति पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, मन बुद्धि और अहंकार हैं—ये अष्ट प्रकृति हैं। इनमें पंचभूतों में सर्वप्रथम पृथ्वी तत्व है। पृथ्वी तत्व का साक्षात्कार करने वाला योगी गन्ध तन्मात्रा की सीमा तक पहुँचता है। जल तत्व का साक्षात्कार करने वाला रस तन्मात्रा की सीमा तक पहुँचता है, अग्नि तत्व का साक्षात्कार करने वाला रूप तन्मात्र की सीमा तक पहुँचता है। उसके बाद वायु तत्त्व का साक्षात्कार करने वाला शब्द तन्मात्र की सीमा तक पहुँचता है और उसके बाद मन और बुद्धि तत्त्वों को पूर्णतया जानकर फिर आत्मतत्व का साक्षात्कार कर लेता है। भगवान ने गीता में इस प्रकार से अपनी अष्टधा अपरा प्रकृति का वर्णन किया है। ये सब साधन योग है। मनुष्य इन तत्वों का साक्षात्कार करने के लिये ध्यान योग का सहारा लेता है। इसके लिये उसे सर्वप्रथम धारणा का अभ्यास करना पड़ता है। धारणा, ध्यान के विषय में मैं तुम्हें अपने व्याख्यानों में बताता रहता हूँ। **'देशबन्धचित्तस्य धारणा'** अपने चित्त को एक लक्ष्य स्थान पर केन्द्रित करना धारणा कहलाता है। मैंने तुम्हें वैशेषिक दर्शन के अनुसार मन का लक्षण कई बार बतलाया है।

'युगपद्ज्ञानानुपत्तिर्मनसोलिङ्गम्' एक समय में जिसको अनेक ज्ञान नहीं होते हैं वह मन कहलाता है। मन ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा एक समय में एक विषय का ज्ञान प्राप्त करता है इसके बाद दूसरी ज्ञानेन्द्रिय उसे अपनी ओर आकर्षित करती है फिर उसे दूसरे विषय का ज्ञान होने

लगता है। इस प्रकार से मनुष्य का मन रात–दिन भिन्न–भिन्न प्रकार के चिन्तनों के अन्दर लगा रहता है। इसलिए मनुष्य मन की ताकत को पा नहीं सकता। योगियों ने वह रास्ता ढूँढ़ा है जिससे मन की ताकत की पहचान होती है। मन बहुत शक्तिमान है। साधारण अवस्था में मन चंचल रहा करता है। किन्तु जब वह एक स्थान पर एकाग्र हो जाये तो उसमें अद्भुत शक्ति आ जाती है। जिससे मनुष्य सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। भगवान पतंजलि देव ने अष्टांग योग का वर्णन किया है। यम नियम से लेकर समाधि तक आठ अंग हैं। यम से लेकर प्रत्याहार तक पाँच बहरंग हैं। उनमें अन्तर्मुखी वृत्ति की आवश्यकता नहीं। मनुष्य बाहर से भी साधना करता हुआ लक्ष्य की ओर बढ़ सकता है। यम–नियमों की साधना की आवश्यकता इसलिए पड़ती है, ताकि साधक अपने मन की वृत्तियों को पूर्ण पवित्र बना ले और मन में किसी प्रकार का विकार न रहे। यमों के अन्तर्गत पहला यम अहिंसा है? अहिंसा व्रत के पालन का परिणाम है–

'अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्संनिधौ वैरत्यागः' अर्थात् जो किसी को दुःख नहीं देना चाहता उसके सम्पर्क में आने वाले हिंसक प्राणी भी वैर भाव छोड़ देते हैं। हमारे प्राचीन हिन्दु जाति के अन्दर जो लोग धर्म प्रधान होते हैं, उनमें अहिंसा का माद्दा होता है। उनसे कह दिया जाये कि वे किसी को पीट दें, मार दें, तो वे ऐसा नहीं कर सकते।

किन्तु यह भी पूर्णरूप से अहिंसा नहीं है। जो लोग कर्मणा, मनसा, वाचा किसी की हिंसा नहीं करते, करना नहीं चाहते वे ही अन्ततः सच्चे अहिंसक बनते हैं। जैनियों का सिद्धान्त रहता है **'अहिंसा परमो धर्मः'** अहिंसा परम धर्म है। भगवान बुद्धदेव ने भी अहिंसा का बहुत बड़ा प्रचार किया। जैन मुनि अपने मुँह पर भी कपड़े की पट्टी बाँध लेते हैं। ताकि उनके श्वास–प्रश्वास से छोटे–छोटे कीटाणु भी न मरें। यह उनकी अहिंसा व्रत का परिचायक है। वैसे तो हजारों जीव हमारे हाथ पैर आदि हिलाने तथा मल–मूत्रादि त्यागने से मर जाया करते हैं। उनकी रक्षा की ही नहीं जा सकती, किसी उपाय से उनकी रक्षा नहीं हो पाती। जो लोग इस प्रकार से अहिंसा व्रत को धारण करने वाले हैं, विचार किया जाये कि क्या वे सच्चे अर्थों में अहिंसक हैं? किसी प्रकार से उनके मन में उद्वेग पैदा कर दिया जाये तो वे लोग मरने मारने को तैयार हो जाते हैं। इसलिए उन लोगों से भी पूर्णरूप से अहिंसा का पालन नहीं होता है। हर व्यक्ति से अहिंसा का पालन नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य द्वैत–दर्शन करता है तब तक वह अहिंसक नहीं बन सकता। **'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना:'** हरेक व्यक्ति के मन में न्यारी–न्यारी मतियाँ होती हैं, इसलिए एक दूसरे की बात उसे पसन्द नहीं आती। हमारा योगदर्शन यह बतलाता है कि मनुष्य अपने जीवन में दुःखों से छूट नहीं पाता वह उनसे छूटने

का उपाय करता है किन्तु दुःख उसे लगे रहते हैं। योगदर्शन का सूत्र है—**परिणामताप संस्कार—'दुःखैः गुणवृत्ति विराधाच्च सर्वमेव दुःखम् विवेकिनः'**। कुछ परिणामी दुःख है, कुछ तापज दुःख है तथा कुछ संस्कार दुःख होते हैं। उतावले में ऐसा कोई काम कर दिया जिससे बार—बार पछताना पड़े। ऐसा परिणामी दुःख होता है। कुछ तापज दुःख होते हैं। ऐसा कोई कर्म कर बैठता है जिसके परिणाम में वह तपता रहता है। मन में कोई संस्कार बैठ जाता है वह मन से निकलता नहीं है। ऐसा संस्कारी दुःख होता है। किसी के मन में भय के संस्कार आ जाते हैं। या और किसी प्रकार के भ्रम के संस्कार आ जाते हैं। इसके साथ—साथ एक और बहुत बड़ा दुःख है वह है गुणवृत्ति विरोध का। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होता जिसका किसी से गुणवृत्ति विरोध न हो। किसी का स्वभाव कैसा है तो किसी का कैसा? सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये त्रिगुणात्मक स्वभाव मनुष्य के होते हैं। परमात्मा की इतनी विचित्र शक्ति है—इन तीनों का ऐसा विचित्र बंटवारा किया है कि किसी का भी स्वभाव संसार में एक दूसरे से नहीं मिलता। एक बात होती है, छोटी शक्ति बड़ी शक्ति के आधीन रहती है। पिता कहता है तू मेरा पुत्र है, तू मेरी आज्ञा का पालन कर। पुत्र अपना धर्म मानकर आज्ञा का पालन करता है किन्तु उसे पिता की सारी हरकतें पसन्द नहीं आतीं। गुरुदेव शिष्य को आज्ञा देते हैं, तुम ऐसा करो। शिष्य आज्ञा का पालन करते हैं किन्तु कोई—कोई शिष्य ऐसे भी होते हैं जो अपने मन में सोचते हैं कि गुरुदेव ने यह आज्ञा दी, ऐसी आज्ञा नहीं देनी चाहिए। पति और पत्नी में यद्यपि अभेद सम्बन्ध होता है किन्तु वृत्तियाँ पति पत्नी की भी अलग—अलग होती हैं। उनका भी स्वभाव नहीं मिलता। संसार में इतने मित्र हैं, प्रेमी है किन्तु स्वभाव किसी दूसरे से नहीं मिलता। किसी का आपस में सच्चा प्रेम नहीं होता। आपस में विकल्प रहा करता है। बड़े—बड़े विद्वानों का भी आपस में गुणवृत्तिविरोध रहा करता है। मनुष्य जीवन में गुणवृत्तिविरोध का दुःख बहुत बड़ा दुःख है। दुःख द्वैत में रहा करता है। जहाँ द्वैत भासता है वहाँ विरोध रहता है। मैंने तुम्हें कई बार अपने व्याख्यानों में बतलाया है कि यम—नियम का पालन योगी के जीवन में अवश्य होना चाहिए। यदि कोई एक भी यम—नियम का पालन कर लेता है तो वह धीरे—धीरे मुक्ति के द्वार तक पहुँच जाया करता है। यदि योगी अहिंसा व्रत का ही पालन करना शुरु कर दे तो योग समाधि की ओर बढ़ जाता है।

किसी को मारना—पीटना ही हिंसा नहीं कहलाता। मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों प्रकार से हिंसा होती है। यदि कोई किसी को कड़वी वाणी बोलता है तो उससे दूसरे के मन में क्षोभ होता है। यह डण्डा मार देने से भी ज्यादा दुःख देता है। जिसके लिए कड़वी वाणी का प्रयोग होता है उसके मन में उद्वेग होता रहता है। उसके मन में प्रतिकार की भावना बनी रहती है

वह सोचता रहता है कि इसने मुझे ऐसा कहा है, समय आने पर इसका अवश्य बदला लूँगा। इसलिए जो मनसा, वाचा, कर्मणा किसी को भी दुःख देना नहीं चाहता वह सच्चा अहिंसक होता है किन्तु ऐसा अहिंसक योग–समाधि में पहुँचकर ही बन पाता है, अन्यथा सब हिंसक ही होते हैं।

दिल्ली में एक बार विश्वयोग सम्मेलन हुआ था उसमें हमें भी बुलाया गया था। उसमें जैन मुनि सुशील कुमारजी भी आये थे। वे जैन–मुनि कहलाते हैं। विचार उनके बहुत अच्छे हैं। उस सम्मेलन में एक सवाल उठा कि योग–यूनिवर्सिटी कहाँ कायम की जाये? सम्मेलन के अध्यक्ष विदेशी थे उनका नाम क्रिस्टोफर हिल था। उनका मानना था कि योग यूनिवर्सिटी भारत से बाहर किसी अन्य देश में स्थापित की जाये। मुझे भी बोलने का अवसर मिला। मैंने कहा–योग भारत की प्राचीनतम विद्या है। मैं सत्य कहता हूँ जितने भी विदेशी यहाँ बैठे हुए हैं उनमें कोई भी योग की ठीक–ठीक परिभाषा बतला दे। मैंने कहा–योग यहाँ के ऋषियों की चीज है। इसलिए योग यूनिवर्सिटी भारत में ही होना चाहिए। यदि इसका थोड़ा बहुत प्रचार विदेशों में भी हुआ तो वह यहीं से गया है। हमारे शास्त्रों का लेख है–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

भारतवर्ष के तपस्वियों से, ब्राह्मणों से ज्ञान–विज्ञान सारे विश्व में फैलता है। संसार के लोग यहाँ के विद्वानों से, योगियों से उस ज्ञान को प्राप्त करते हैं। उस सम्मेलन में एक और भी प्रस्ताव आया। वह किया था सुशील कुमार जैन ने। वे कहने लगे–इस विश्वविद्यालय का नाम योग यूनिवर्सिटी क्यों रखा जाये। इसका नाम अहिंसा–यूनिवर्सिटी होना चाहिए। निर्णय–समिति के हम सात सदस्य थे। कनखल वाले महामण्डलेश्वर स्वामी प्रकाशानन्द जी तथा अन्य कई प्रतिष्ठित योगी थे। जब प्रस्ताव आया कि इस विश्वविद्यालय का नाम योग विश्वविद्यालय ही क्यों हो? इस पर कमेटी के सदस्य मेरी ओर देखने लगे कि मैं इसका जवाब दूँ। मैंने उत्तर दिया–इसका नाम अहिंसा यूनिवर्सिटी नहीं योग यूनिवर्सिटी ही होना चाहिए। अहिंसा योग का एक अंग है। योग अंगी है। अंगी के अन्दर अंग अपने आप आ जाता है। किसी को हम बुलाते हैं इधर आओ। तो उसके साथ में ही उसके हाथ भी आयेंगे, पैर भी आयेंगे, वे सब अपने आप उसके साथ आ जायेंगे। क्योंकि ये सब उसके अंग हैं। इसलिए इस यूनिवर्सिटी का नाम योग यूनिवर्सिटी होना चाहिए। अहिंसा यूनिवर्सिटी नहीं। अस्तु। मैं जो बात तुम्हें समझा रहा था वह यह था कि यदि मनुष्य अहिंसा का पूर्णव्रती बन जाता है–पूर्णरूपेण अहिंसक हो जाता है, तो उसके लिये हमारे योग शास्त्र में लेख है–**अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः।** अहिंसा में पूर्ण प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंसक जीव भी वैरभाव त्याग देते

है। जिन साधकों के अन्दर महाभावों का उदय हो जाता है। उनमें तेज ही तेज रहा करता है। आनन्दानुगत समाधि के अन्दर महाभावों का उदय होता है। जिसका वे ध्यान करते हैं, वे सर्वत्र दिखाई दिया करते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

आनन्दानुगत में योगी सर्वत्र तेज ही तेज देखा करता है।

'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि च आत्मनि'

प्राणीमात्र को जो अपने अन्दर देखता है और प्राणिमात्र में जो अपने को देखता है ऐसा योगी युक्तात्मा योगी सम दर्शन वाला होता है। वहाँ पर होता है अद्वैत। योगी देखता है, इसमें भी मैं हूँ, सर्वत्र मैं ही मैं हूँ ऐसा देखा करता है। योगी ऐसा कथन मात्र या भावना मात्र से नहीं यथार्थ में देखता है। योग समाधि में ऐसी अनुभूति होती है। अस्मितानुगत समाधि में योग अपने हजारों चित्त बनाकर हजारों के पास एक साथ चले जाते हैं। वह बात और है किन्तु अपनी आत्मसत्ता के अन्दर सबको देखना और बात है। ऐसा योगी सर्वत्र समदर्शन वाला होता है। वह सर्वत्र अपनी सत्ता को देख रहा है। फिर वह किस से विरोध करेगा—**'तत्र कः मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः'** एकत्व दर्शन करने वाले योगी को मोह (द्वेष) और शोक कहाँ? वस्तुतः ऐसी स्थिति में पहुँचकर ही योगी सच्चा अहिंसक होता है या जहाँ पर महाभावों का उदय हो जाता है वहाँ पर भी वह पूर्ण अहिंसक बन जाता है। महाभावों का उदय कहाँ होता है? देखो! अभी मैं साधन योग की बात कर रहा हूँ सिद्धयोग की नहीं। आज के व्याख्यान का प्रकरण कुछ इस प्रकार का चल पड़ा है, मैं तुम्हें बताना यह चाह रहा हूँ कि योगी को पहले यम–नियमों की साधना कर लेनी चाहिए। क्योंकि ऐसा न करने पर योगी के रास्ते में अन्तराय आ जाया करते हैं। **'काम एष क्रोधः एष रजोगुणसमुद्भवः'** यम–नियम का पालन करने वाले के मार्ग में बाधायें नहीं आतीं। अहिंसा व्रत का मनसा, वाचा, कर्मणा का पालन करने वाले को कामनायें बाधा नहीं पहुँचा पातीं। देखो! तुम किसी को कटु वाणी बोलते हो। दूसरा व्यक्ति उसका उत्तर नहीं देता। वाणी से कुछ नहीं कहता क्योंकि तुम धनवान हो, बलवान हो, ताकत वाले हो किन्तु उसके मन में दुःख तो होता ही है। और यदि वह कमजोर मन वाला है तो कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा अन्यथा मन की ताकत वाला है तो बाहर से कुछ न कहने पर भी उसका मन अपना प्रभाव कर जायेगा। मैं तुम्हें अमृतसर में पढ़ने वाले दो विद्यार्थियों की घटना सुनाया करता हूँ। इनमें से एक श्री प्रभुजी का योग दीक्षित बच्चा था। दूसरे लड़के के द्वारा उसकी पुस्तकें चुराये जाने के कारण मन के क्षुब्ध होने से चुराने वाले लड़के की

विक्षिप्तता के बारे में मैं तुम्हें बताया करता हूँ। उस लड़के के पागल हो जाने पर प्रभुजी ने कहा था–देखो! यह हिंसा हो गई। योगी को इतना क्रोध नहीं करना चाहिये। यदि मन ताकत वाला है तो इस प्रकार से मनसहिंसा हो जाया करती है। इसलिये जो व्यक्ति ध्यानाभ्यासी है उसे दूसरे का अहित चिन्तन नहीं करना चाहिये। क्योंकि उसके चिन्तनमात्र से दूसरे का अनिष्ट हो जाया करता है। तुमने हरिहरानन्द जी की घटना कई बार मुझ से सुनी होगी। हरिहरानन्द श्रीप्रभु जी के बच्चे हैं जो आज भी शीशगिरी पहाड़ी पर समाधिस्थ हैं। तीन महीने में समाधि से उठा करते हैं। हरिद्वार में एक बार कुम्भ के मौके पर सभी गुरु भाई बहिन हठ करने लगे कि हरिहरानन्द के दर्शन करा दें। श्री प्रभुजी **'अमानी मानदः मान्यः'** हैं वे अपने बच्चों को मान दिया करते हैं। प्रभुजी ने कहा–तुम ध्यान में बैठकर उनसे कह दो–श्री प्रभुजी का हुकुम है चले आओ। वे समाधि से उठकर चले आये। वे ध्यान के नशे में 'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन–रात जब योग आनन्दानुगत समाधि में होता है तो उसमें महाभावों का उदय हो जाया करता है। उसे कुछ भी सुध–बुध नहीं रहती।

हरिहरानन्द जी पहाड़ से उतरते हुए एक गाँव के पास किसी वृक्ष के नीचे बैठ गये। नवयुवक थे ही। जब योगी समाधि लगाता है तो उसके शरीर की वही अवस्था रहती है जो समाधि से पहले होती है। क्यों? वह खानपान करता नहीं है, मल–मूत्र का त्याग नहीं करता, सोता नहीं है केवल खेचरादि की क्रियाओं से अमृतपान करते रहते हैं। हरिहरानन्द ध्यानावस्था में ही वृक्ष के नीचे लेटे हुये थे। एक ठाकुर साहब आये। वह क्रोधी, अहंकारी स्वभाव का था। हरिहरानन्द से कहने लगा–अरे! नग्न पड़ा है यहाँ पर? उठ यहाँ से। जब उन्होंने बात नहीं सुनी तो उनके शरीर पर तीन–चार बेंत मार दिये। चोट लगते ही वे समाधि से उठे–उसे देखकर कहने लगे–अच्छा! तू यहीं गिर जा, इसी समय। वह वहीं गिर गया और उसका शरीरान्त हो गया। श्री प्रभुजी हरिद्वार में भोजन कर रहे थे। वे कहने लगे–अरे, अरे देखो! हरिहरानन्द ने यह क्या कर दिया। मैंने पहले ही कहा था कि वह यहाँ आने लायक नहीं है। अब उससे कह दो वहीं से वापिस चला जाये। हमारे कुछ गुरु भाई गये और वहाँ जाकर सारी हकीकत देखी। उन्हें श्रीप्रभुजी की वापिस जाने की आज्ञा सुनाकर वापिस भेज दिया। यह क्यों हुआ? यह यूँ हुआ–सिद्धान्त है **'वृत्तिसारूप्यमितरत्र'** योगी जब समाधि से उठ जाता है तब वह अपनी मूल वृत्ति के अनुसार चेष्टा करता है। **'सदृशं चेष्टते स्वस्या प्रकृतेर्ज्ञानवानपि'** ज्ञानी लोग भी अपनी प्रकृति के अनुसार वर्तते हैं। श्री प्रभुजी कहा करते थे जो लोग गुरुदेव के थपेड़े खाकर यम–नियमों की साधना नहीं करते वे उल्टे–पुल्टे काम किया करते हैं। और अपने आप को पतन की ओर ले जाया करते हैं। वे किसी को शाप

देंगे, मार देंगे। इससे उनका पुण्य क्षीण हो जायेगा। जो दण्ड देने लायक नहीं है उनको भी दण्ड देने पर तो पुण्य क्षीण होगा ही होगा। इसलिये योग–दर्शन में भगवान पतंजलि देव जी ने सर्वप्रथम यम–नियमों की साधना का उपदेश दिया है। उनमें यमों के अन्दर अहिंसा को सर्वप्रथम रखा। अहिंसा व्रत का पालन करने वाला मनसा, वाचा, कर्मणा किसी को दुःख नहीं देता। तुमने गौरांग महाप्रभु की एक घटना सुनी होगी। गौरांग महाप्रभु नदी से स्नान करके आ रहे थे। रास्ते में एक मुसलमान ने उन पर थूक दिया। वह दोबारा स्नान करने चले गये। इस प्रकार वह मुसलमान उन पर कई बार थूकता रहा और वे नहाते रहे। सौ बार जब ऐसा हुआ तो उनकी अहिंसक व अक्रोध वृत्ति से प्रभावित होकर वह मुसलमान उनका अनन्य भक्त बन गया। मुझे श्री प्रभु से सम्बन्धित घटना याद आई। एक बार श्री प्रभुजी ऋषिकेश से आगे ब्रह्मपुरी के जंगलों में अपने शिष्यों के साथ घूमने गये। श्री प्रभुजी ने पहले कभी वहाँ निवास किया था। आजकल तो ब्रह्मपुरी में भी पक्के आश्रम आदि बन गये हैं। हमारे गुरु भाई श्री मुल्खराज जी भी श्री प्रभुजी के साथ थे। वे तुरीयस्थिति में रहा करते थे। महाभावों का उदय उनके अन्दर हो चुका था। उनकी स्थिति यह थी–

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वच मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

वे हर जगह रोम–रोम में श्री प्रभुजी के दर्शन किया करते थे। स्वयं भी ध्यान करते–करते उनमें लय हो जाया करते। वे देखते थे कि उनकी चार भुजायें हो गई हैं। वहाँ जंगल में जाते हुये सामने से एक चीता निकल आया। हमारे गुरु भाई बहिन घबरा से गये और कहने लगे–'प्रभु जी! चीता आ गया, चीता आ गया श्री प्रभुजी ने मुल्खराज जी से कहा–'राजे! देखो यह क्या आ रहा है' मुल्खराज जी झट से चीते के पास पहुँच गये और उस पर हाथ फेरने लगे व प्यार करने लगे। फिर कहने लगे–प्रभुजी! आपका बच्चा है, आपका बच्चा है। यूँही बार–बार कहते रहे। प्रभुजी कहने लगे–राजे! इसे छोड़ दे। थोड़ी देर में चीता अपने आप दूर चला गया। इसे कहते हैं–**'अहिंसाप्रतिष्ठायाम् तत्संनिधौ वैरत्यागः।'** जिनकी अहिंसा व्रत पर पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है वे ही ऐसा कर सकते हैं। किन्तु यह स्थिति बिना योग समाधि के नहीं आया करती। तुमने भगवान शंकर के चित्र देखे ही हैं। उनके शरीर पर अनेक साँप लिपटे रहते हैं। यह उनकी अहिंसा वृत्ति के कारण है। ब्र. गोपालानन्द जी जब श्री प्रभुजी के पास आ गये तो पीछे से उनके पिता जी उन्हें लेने के लिये आ गये। उस समय ब्रह्मचारी जी का नाम राम गोपाल था। वह (पिता) प्रभुजी के पास आकर कहने लगे–'महाराज! हमारा एक ही लड़का है। आप इसे घर वापिस भेज दें।' श्री प्रभुजी कहने लगे तुम्हारा लड़का

है, तुम उसे अपने साथ लिवा ले जाओ। उस समय ब्र. गोपालानन्दजी ध्यान में बैठे हुये थे। जब उनके पिताजी उस कमरे में पहुँचे तो देखा कि एक भयंकर काला सर्प उनके शरीर पर घूम रहा है। दो तीन बार पिता ने अपने लड़के के पास जाने की कोशिश की किन्तुसर्प फुँसकार मारता रहा। ब्र. जी के पिता गोविन्दशरण सोचने लगे। आश्चर्य की बात है यह भयंकर सर्प मेरे लड़के को कुछ नहीं कर रहा है और मुझे काटने को दौड़ता है। इस बात से प्रभावित होकर उन्होंने ब्र. जी को सदा के लिये श्री प्रभुजी के चरणों में रहने की अनुमति दे दी। यह सब अहिंसा वृत्ति का परिणाम था। इसलिये देखो! अपने आप को योगी बनाने की चेष्टा करो। जब तक अन्तर्मुखी वृत्ति नहीं बनती तब तक **'अन्धेन नीयमाना: यथा अन्धा'** वाली बात रहती है। बस! इस समय अपनी वाणी को यही विराम देता हूँ। सभी को बार-बार आशीर्वाद।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु: पापयोनय:।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।
किं पुनर्ब्राह्मणा: पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।

हे अर्जुन! मेरे अनन्यशरण होकर स्त्री, वैश्य और शूद्रगण तथा चाण्डालादि पापयोनिवाले भी निश्चय परमगति को प्राप्त होते हैं। फिर पुण्ययोनि ब्राह्मण तथा राजर्षि (मेरे शरणागत) भक्तों की तो बात ही क्या है। अतएव तुम इस सुखरहित और अनित्य मनुष्यजन्म को पाकर निरन्तर मेरा ही भजन करो।

सम्पादकीय—

सिद्धयोग—हमारी प्यारी पत्रिका

—आचार्य (डॉ.) दासलाल जी महाराज

प्रिय पाठकगण/गुरु भाई—बहिन,

जय गुरुदेव की!

क्षण—क्षण स्मरणीय गुरुदेव योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रूप में हमारी पत्रिका **'सिद्धयोग'** अपनी आयु के 52 वर्ष पूरा करके अप्रेल विशेषांक के साथ ही 53वें वर्ष में प्रवेश कर जाएगी। श्री गुरुदेव भगवान ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन् 1968 में किया था, जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्त्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ—साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता आ गयी है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र—पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है। किन्तु 'सिद्धयोग' जिस प्रकार से योग के सैद्धान्तिक दुरूह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम रही है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से भी गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रूप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है—**आत्मा व अरेद्रष्टव्यः, श्रोतव्यः मन्तव्यः निदि—ध्यासितव्यः।** अर्थात् आत्मा का दर्शन करना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के मुख से आत्म तत्त्व के विषय में श्रवण करना चाहिए। श्रवण करने के पश्चात् मनन करना चाहिए। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिए। निदिध्यासन ही योग की भाषा में ध्यान—योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रन्थों में शक्तिपात की अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि

दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरुमन्त्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान् ने 'सिद्धयोग' परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरूप, विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों में सिद्धयोग के माध्यम से ही गुरुदेव के दर्शन एवं कृपालाभ होते देखा गया है। जीवन से परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही बदल गयी। पत्रिका के पठन–पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह, उल्लास एवं मार्गदर्शन मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है, इसके दुरूह विषयों को समझना बहुत कठिन है, किन्तु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है। जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नहीं है, वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन हैं–**''संशयात्मा विनश्यति''** अर्थात् संशय युक्त व्यक्ति पथभ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिए 'सिद्धयोग' श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि–**''स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्''** अर्थात् स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुमन्त्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए। अस्तु।

पत्रिका के लिए, गुरुदेव के समय से ही, किसी प्रकार की विज्ञापन आदि सामग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है, वह आज भी यथावत् है। 25–30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है, यह सब पूज्य गुरुदेवजी की कृपा का ही फल है। उदारमना गुरुभाई–बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में, मैं उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से भी निवेदन करूँगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में गंगापुर मंडल, कानपुर मंडल व सहारनपुर मंडल के साधकों का प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है, अतः समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क भेज दें। वार्षिक शुल्क रु. 200/– हो गया है तथा आजीवन

शुल्क रु. 1000/– हो गया है।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में सँवाई आश्रम, आगरा में बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जायेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभुजी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बना लें। इस अवसर पर श्री प्रभुजी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

श्री रामनवमी योग महोत्सव दिनांक 19, 20 व 21 अप्रैल को मनाया जाना निश्चित हो चुका है।

सभी गुरु भक्तों को चाहिये कि श्री रामनवमी के पवित्र उत्सव पर धाम पर पहुँचें तथा गुरुदेव की कृपा को प्राप्त करें। जो यह मानते हैं कि गुरुदेव तो हैं नहीं वहाँ जाकर क्या करेंगे यह उनकी महान भूल है। गुरुदेव की शक्ति तो अनवरत बरसती रहती है। गुरुदेव कहा करते थे कि श्री सिद्धगुफा से ही सारी दुनिया को योग का प्रकाश मिल रहा है। अतः सभी आश्रम की शाखाओं के संचालकों को चाहिये स्वयं भी आवें और अन्य गुरु भक्तों को भी पवित्र धाम के दर्शन करावें ताकि योग ध्यान में उत्तरोत्तर उन्नति पा सकें। जीवन में यदि आत्म दर्शन पा लिया तो अत्युत्तम बात है अन्यथा 'महती विनष्टि' महान संपात की बात है–बहुत बड़ी हानि की बात है। अतः आत्मदर्शन का लक्ष्य सामने रखते हुए **'कार्यम् वा साधयेम् देहं वा पातेयम्'** अर्थात् या तो आत्मसिद्धि रूप महान कार्य को सिद्ध करूँगा या मेरा देह पात हो जाए तब भी कोई चिन्ता न मानते हुए सतत् आत्म लाभ की ओर अग्रसर रहना चाहिए। भौतिक भोगवाद प्रपञ्च है अपने साथ धोखा है। अतः सत्य की प्राप्ति के लिए प्राणपण से लग जायें।

अन्त में, मैं उन सभी सुधी लेखक बन्धुओं, विद्वानों को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिनके सुन्दर एवं योग परक लेखों के कारण पत्रिका की गरिमा व लोकप्रियता बनी हुई है। जो इसके ग्राहकों को प्रेरणा देकर उन्हें लाभ पहुँचा रहे हैं वे भी धन्यवाद के भागी हैं तथा स्तुत्य हैं।

जय गुरुदेव जी की।

आपका

डॉ. दासलाल योगाचार्य

संपादक–सिद्धयोग

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्या

—डॉ. विजय सिंह

उन्हत्तरवें अध्याय में मनुष्योचित जीवन यापन करते भगवान श्रीकृष्ण की अचिन्त्य योग शक्ति प्राकट्य की कथा वर्णित है। नारद जी के मन में भगवान श्रीकृष्ण के दैनिक कार्यक्रमों को देखने की अभिलाषा जागी। वे देखना चाहते थे कि भौमासुर से मुक्त सोलह हजार राजकुमारियों का पाणिग्रहण कर उनके साथ भगवान का कैसा व्यवहार-आचरण है। वे द्वारिका जाकर भगवान श्रीकृष्ण के विशाल महलों में से एक में प्रवेश किये। वहाँ विश्वकर्मा द्वारा अद्भुत चँदोवे, मणि जड़ित पलंग आदि दिव्य कृत को देखा। उन्होंने देखा रुक्मिणी जी स्वयं अपने हाथों से भगवान को चवर से हवा कर रही थीं। नारद जी को आया देखकर भगवान श्रीकृष्ण पलंग से उठकर देवर्षि नारद के चरणों में शिरसा प्रणाम किये और अपने आसन पर बैठाया और शास्त्रोक्त विधि से पूजन किया। पुनः बड़ी मृदुला से बोले-प्रभो! आप तो समग्र ज्ञान, वैराग्य, धर्म, यश, श्री से परिपूर्ण हैं। हम आपकी क्या सेवा करें?

नारद जी ने कहा-भगवन्! यह हमारा सौभाग्य है कि आपके चरण कमलों का मुझे दर्शन मिल रहा है। आप ऐसी कृपा मुझ पर करिये कि इन चरण कमलों की स्मृति में मैं सर्वदा ध्यानमग्न रहूँ। ऐसा कहकर श्री नारद जी योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान श्रीकृष्ण की योगमाया का रहस्य जानने के लिये उनकी दूसरी पत्नी के महल में गये।

ततोऽन्यदाविशद् गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः।
योगेश्वरेश्वरस्याङ्ग योगमायाविवित्सया।।11।। *(अ. 69 स्क. 10)*

दूसरे महल में जब नारद जी गये तो भगवान ने नारद जी से अनजान की तरह पूछा-आप यहाँ कब पधारे? आप परिपूर्ण आत्मा राम हैं, हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं। फिर भी ब्रह्मस्वरूप नारद जी आप कुछ-न-कुछ अवश्य आज्ञा कीजिये। नारद जी यह सब देखकर चकित विस्मित हो गये। वे चुपचाप वहाँ से उठकर अन्य महल में चले गये। उन्होंने कहीं भगवान को नन्हें-नन्हें बच्चों को दुलार करते देखा। कहीं श्रीकृष्ण स्नान की तैयारी कर रहे हैं। कहीं यज्ञ कर रहे हैं। किसी महल में रानी के साथ चौसर खेल रहे हैं। कहीं संध्या कर रहे हैं। कहीं उन्हें हास्य-विनोद करते देखा। कहीं गूढ़ विषय पर मंत्रणा करते पाया। एक महल में जाने पर नारद जी ने देखा एकान्त में बैठकर ध्यानस्थ हैं कहीं गुरुजनों को भोग सामग्री समर्पित करके उनकी सेवा करते देखा।

ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम।
शुश्रूषन्तं गुरुन् क्वापि कामै भोगैः सपर्यया।।30।। *(अ. 69 स्क. 10)*

कहीं घर से कन्याओं को विदा कर रहे हैं, तो कहीं बुलाने की तैयारी में लगे हैं। योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के इन विराट उत्सवों को देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

इस प्रकार मनुष्योचित-लीला करते भगवान श्रीकृष्ण की योगमाया का ऐश्वर्य देखकर नारद जी ने मुसकुराते हुये उनसे कहा-योगेश्वर! आपकी योगमाया ब्रह्माजी आदि बड़े-बड़े मायावियों के लिये भी अगम्य है। परन्तु मुझ भक्त पर आपके अनुग्रह से आपकी माया स्वयं प्रकट हो गयी है।

अथोवाच हृषिकेशं नारदः प्रहसन्निव।
योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम्।।37।।
विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम्।
योगेश्वरात्मन् निर्माता भवत्पादनिषेवया।।38।। *(अ. 69 स्कं. 10)*

नारद जी ने भगवान से आज्ञा लेकर उनके पावन लीलाओं का गान करते हुये प्रस्थान किया।

देवर्षि नारद जी ने एक ही श्रीकृष्ण को प्रत्येक पत्नि के महल में अलग-अलग रूप में, क्रिया में संलग्न देखा। उनकी योगमाया का परम ऐश्वर्य देख कर नारद जी की मनोदशा विस्मय और कौतूहल से भर उठी।

भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्म बेला में ही उठ जाते हैं। हाथ, पैर, मुँह धोकर अपने मायातीत आत्मस्वरूप का ध्यान करने लगते हैं। उस समय उनका रोम-रोम आनन्द से खिल उठता है।

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्।।4।। *(अ. 7 स्कं. 10)*

इसके पश्चात् पवित्र जल से स्नान करके। पुनः सन्ध्या वन्दन, होमादि कर्म करते हैं। कुल के बड़े-बूढ़े, गुरुजन को प्रणाम करके मांगलिक वस्तुओं का स्पर्श करते हैं। इसके पश्चात् वे सात्यकी और उद्धवजी के साथ सुधर्मा नाम की सभा में प्रवेश करते हैं। उस सभा की यह विशेषता है कि जो लोग सभा में बैठते हैं, उन्हें भूख-प्यास, शोक-मोह और जरा-मृत्यु नहीं सताती।

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः।
प्राविशद् यन्निविष्टानां न सन्त्यङ्ग षडूर्मयः।।7।। *(अ. 70 स्कंत्र 10)*

एक दिन सभा में एक नवागन्तुक आया और वह जरासंध के बीस हजार कैदी राजाओं का भेजा हुआ दूत था। उसने उन राजाओं के घोर दुःख का वर्णन करते हुये कहा-सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण आप मन और वाणी के अगोचर हो, आपकी शरण में जो आता है उसका सारा भय आप नष्ट कर देते हो। प्रभो हमारी भेद बुद्धि मिटी नहीं है। हम जन्म-मरण रूपी संसार चक्र से भयभीत होकर आपकी शरणागत हो रहे हैं। आप कृपा करके हम सभी का क्लेश जरासंध को मारकर दूर करिये। दूत ने कहा-भगवन्! जरासन्ध के बन्दी नरपतियों

ने इस प्रकार आपसे प्रार्थना किया है। आप कृपा कर उन दीनों का कल्याण करिये।

राजाओं का भेजा दूत जब यह सब कह रहा था उसी समय परम तेजस्वी नारद जी वहाँ आ पहुँचे। उनकी जटाएँ चमक रही थीं, मानो साक्षात् भगवान सूर्य ही उदय हो गये हों। भगवान श्रीकृष्ण एवं सम्पूर्ण सभासद खड़े होकर नारद जी का स्वागत किया और आसन पर विराजमान कराकर विधिवत पूजन किया। भगवान ने कहा–देवर्षे! इस समय तीनों लोकों में कुशल मंगल तो है न? आप तीनों लोकों में विचरण करते रहते हैं अत: हम आपसे जानना चाहते हैं कि युधिष्ठिर आदि पाण्डव इस समय क्या करना चाहते हैं?

नारद जी ने कहा–प्रभो! आप स्वयं परब्रह्म हैं, तब भी आपने जो अपने फुफेरे भाई और प्रेमी भक्त युधिष्ठिर क्या करना चाहते हैं, यह बात मैं कहता हूँ। वे श्रेष्ठ राजसूयज्ञ द्वारा आपकी आराधना करना चाहते हैं। उस यज्ञ में, आपका दर्शन करने के लिये बड़े–बड़े देवता एवं नरपतिगण एकत्र होंगे। भगवन्! आप स्वयं विज्ञानानन्दघन हैं। आपके ध्यान करने मात्र से सभी पवित्र हो जाते हैं फिर जो आपका दर्शन एवं स्पर्श प्राप्त करते हैं उनका तो कहना ही क्या?

श्रवणात् कीर्तनाद् ध्यानात् पूयन्तेऽन्तेवसायिनः।
तव ब्रह्मयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः॥43॥ *(अ. 70 स्क. 10)*

राजाओं के भेजे हुये दूत की बात सुनकर सभा में बैठे वीर यदुवंशी जरासंध पर चढ़ाई करने की बात करने लगे तब स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव जी से पूछा–तुम्हीं बताओ इस विषय में हमें क्या करना चाहिये? उद्धव जी ने मन में सोचा सर्वज्ञ होने पर भी अनजान की तरह सलाह पूछ रहे हैं।

उद्धव जी ने कहा–प्रभो! राजसूयज्ञ वही कर सकता है जो दसों दिशाओं पर विजय कर ले अत: पाण्डवों के यज्ञ पूर्ती तथा शरणागतों की रक्षा हेतु पहले जरासन्ध को जीतना आवश्यक है। सैन्य बल से जरासन्ध प्रबल है अत: मेरा मत है कि भीमसेन ब्राह्मणवेष में जाकर उससे युद्ध की भीक्षा माँगे। वे द्वन्द्व युद्ध में उसे मार डालें। आप सर्वशक्तिमान हैं, भीम निमित्त बनेंगे कालस्वरूप तो आप ही हैं। भगवान श्रीकृष्ण, नारद जी तथा सम्पूर्ण सभागत लोगों ने उद्धव जी के इस बात से सहमत हो गये।

श्री नारद जी ने मन–ही–मन भगवान को प्रणाम कर आकाश मार्ग से प्रस्थान किया। भगवान ने दूत से कहा–दूत! तुम अपने राजाओं से कहना, मैं जरासंध को जल्द ही मरवा डालूँगा।

भगवान अपने रानियों सहित हस्तिनापुर पहुँचे वहाँ युधिष्ठिर ने परम आदर एवं आनन्द से भगवान का स्वागत किया। श्रीकृष्ण जी अपनी बुआ कुन्ती का अभिवादन कर महल में निवास करते हुये कई महीनों वहाँ रहे।

जीवन में उपासना का महत्व

कहाँ? क्यों और कितनी बार?

—पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

प्रभु उपासना प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन प्रतिक्षण करने का ध्यान रखना ही चाहिए। उपासना का प्रकार, स्थान और समय क्या होना चाहिए—इस विषय में वेदों और स्मृतियों में जो दिशाबोध दिया गया है वही इस लेख में विद्वान् लेखक बन्धु ने विस्तार से समझाने का प्रयास किया है। योग साधकों को इससे अपनी उपासना का समय, स्थान और प्रकार निश्चित करने में सहायता मिलेगी ऐसा हमारा निर्णय है।

प्रतिदिन की उपासना चार बार होनी चाहिए जैसा कि यह मन्त्र इंगित कर रहा है।

—सम्पादक

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः॥

अथर्व 11/2/16

अर्थात्

''सबके उत्पादक और दुःख निवारक ईश्वर के लिए सायंकाल, प्रातःकाल, रात्रि के समय तथा दिन के समय मैं नमन करता हूँ।'' अर्थात् (1) प्रातःकाल के समय, (2) सायंकाल के समय, (3) दिन के मध्य में, तथा (4) रात्रि के समय, इस प्रकार प्रतिदिन चार बार सर्व जगन्नियंता परमेश्वर को नमन करना चाहिए।

''सायं, प्रातः, दिवा, रात्र्या''! ये चार शब्द चार समय के बोधक हैं। योगीजन जो विशेष प्रकार से आत्मिक उन्नति चाहते हैं वे चार बार योगाभ्यास करते हैं। ये चार समय योग के पुस्तकों में प्रसिद्ध हैं। विशेष पुरुष जो इसी योगाभ्यास आदि को करना चाहते हैं, उनके लिए प्रतिदिन चार बार अभ्यास पूर्वक ध्यान धारणा करना योग्य है। परन्तु जो लौकिक व्यवहार में पड़े हैं, और लौकिक व्यवहार का साधन करते हुए आत्मिक उन्नति धीरे—धीरे करना चाहते हैं, उनके लिए प्रतिदिन तीन अथवा कम से कम दो बार उपासना लिखी है। ऐसा इन मन्त्रों का विचार करने से प्रतीत होता है।

उक्त वेद मन्त्रों से स्पष्ट प्रतीत होता है, कि प्रतिदिन दो, तीन और चार बार उपासना करने का उल्लेख वेद में है।

(1) प्रातःकाल, (2) दोपहर, दिन का मध्य समय (3) सायंकाल और (4) रात्रि का समय ये चार उपासना के समय हैं। दिन पुरुषार्थ का समय है और रात्रि आराम और विश्राम का समय है। पुरुषार्थ करने का प्रारम्भ करने के पूर्व ईश्वरोपासना करके मन प्रशान्त और उदात्त बनाकर विविध पुरुषार्थ करने का प्रारम्भ करना उचित है, प्रातःकाल से दिन के मध्य तक अपना कार्य व्यवहार करने के पश्चात् थोड़े समय में ईश्वर उपासना करने से जो उत्साह और आनन्द प्राप्त होता है, उससे दिन के शेष समय में अपना कार्य–व्यापार करने के लिए निःसन्देह मन की योग्यता और कार्यक्षमता अधिक होती है। प्रातःकाल की संध्या से दिन के पुरुषार्थ शुद्ध रीति से करने के लिए मन की तैयारी होती है, इसी प्रकार सायंकाल की संध्योपासना से रात्रि का आराम और विश्राम प्राप्त करने की योग्यता उपासक के मन में उत्पन्न होती है। इसलिए कम से कम प्रातःकाल में और सायंकाल में अर्थात् दिन में दो बार अवश्य संध्योपासना करना चाहिए, ऐसी शास्त्राज्ञा और परिपाटी भी है।

दो से अधिक बार संध्योपासना करने का कहीं भी निषेध नहीं है और उक्त मन्त्रों में अधिक बार उपासना की स्पष्ट सूचना है। इसलिए प्रतिदिन दो बार आवश्यक और तीन अथवा चार बार ऐच्छिक संध्योपासना करना वेदानुकूल है।

यद्यपि मन्त्रों के आधार से मैंने पूर्वोक्त अनुमान किया है तथापि इस विषय में अधिक खोज होने की आवश्यकता है। स्वाध्याय शील पाठकों को उचित है कि वे उस विषय का विचार निष्पक्षपात होकर वैदिक दृष्टि से करें, और वेद मन्त्रों के आधार पर जो पद्धति स्पष्ट सिद्ध होती है, उसको मानें क्योंकि वैदिक पद्धति ही सब मनुष्यों का सच्चा हित करने वाली है। दुराग्रह से धर्म का नाश होता है और निष्पक्षता पूर्वक सुविचार के अनुष्ठान से धर्म का परिपालन होने के कारण सब मनुष्यों की उन्नति होती है।

संध्या कहाँ करनी चाहिए?

संध्या करने के लिए किसी विशेष स्थानादि की आवश्यकता है या नहीं। यह आशय इस प्रश्न का है। इस विषय में निम्न मंत्र देखिये–

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्।
धियो विप्रो अजायत।।

–यजु. 26/15

"पहाड़ों की भूमि पर, और नदियों के संगम पर बैठकर ज्ञानी लोक धारणायुक्त बुद्धि से उन्नति को प्राप्त करते हैं।" अर्थात् धारणाध्यान आदि करने के लिए पहाड़ों के सुन्दर

स्थान, तथा नदियों के मनोहर संगम बहुत लाभदायक होते हैं। ज्ञानी लोग यहाँ बैठकर योग–साधन करते हुए आत्मिक उन्नति को प्राप्त करते हैं। यह बात यहाँ सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, कि पहाड़ों के गंभीर दृश्य और नदियों के आल्हादकारक स्थान चित्त की एकाग्रता करने के लिए बहुत सहायता कर सकते हैं। इन स्थानों में स्वभावतः विशालता, गम्भीरता, और प्रसन्नता होने के कारण मन की एकाग्रता होने में बहुत सहायता होती है।

सुन्दर उद्यान, मनोहर तालाब, प्रशस्त और रमणीय वाटिका आदि स्थानों में भी पूर्वोक्त प्रकार सुगमता से मन उपासना में लीन हो सकता है। परन्तु सर्वसाधारण मनुष्यों के लिए सदासर्वदा इस प्रकार के स्थान ईश्वरोपासना करने के लिए प्राप्त होना बहुत कठिन है, इसलिए अपने घरों में ही योग्य और पवित्र स्थान संध्या के लिए बनाना आवश्यक है। जो कमरा, स्वच्छ, पवित्र, सुन्दर और रमणीय बनाया जा सकता है, जो केवल संध्या के लिए ही रखा जा सकता है, जिसमें विषयोपभोग आदि कृत्य किये नहीं जाते, जो शीतोष्ण कालों में विशेष शीत और विशेष उष्ण नहीं होता, जिसमें चूहे आदि के बनाये बिल आदि नहीं हो सकते, इस प्रकार का कमरा केवल संध्योपासना के लिए रखना चाहिए।

यदि अपने घर के चारों ओर बाग, अथवा पुष्प वाटिका हो तो बहुत अच्छा है। परिस्थिति के वशात् न हो, तो नगर के बाहर कोई ऐसा रम्य स्थान हो, उसका उपयोग करना चाहिए। इनके अभाव में अपने घर का कमरा संध्या के लिए सजाना चाहिए, क्योंकि जहाँ भी इच्छा हो बैठकर जिस किसी समय में संध्या के मन्त्र पढ़ने से संध्या का वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता।

अपने घर का कमरा यदि उत्तर दिशा की ओर होगा तो बहुत अच्छा हो, क्योंकि घर की उत्तर दिशा का भाग गर्मी में बहुत नहीं तपता। इस कमरे के लिए विशेषकर पूर्व पश्चिम की ओर प्रशस्त खिड़कियाँ रहनी चाहिए, जिससे सूर्योदय सूर्यास्त की अभिनन्दनीय शोभा का आनन्द उपासक को प्राप्त हो सके। यह कमरा अन्दर और बाहर से स्वच्छ, सुन्दर और पवित्र बनाना चाहिए। अन्दर के कौने, जमीन, दीवार और छत निर्मल रखने का यत्न करना चाहिए। बाहर से भी किसी प्रकार की मलिनता युक्त वायु आदि न आने पाये। मलमूत्र विसर्जन करने के स्थान तथा दूसरे दुर्गन्ध के स्थान पास न हों। इस प्रकार का कमरा केवल संध्या ही के लिए रक्षित रखना चाहिए।

अर्थात् इस कमरे के अन्दर ऐसे ही पदार्थ रखे जावें जिनका उपयोग परमेश्वर के भजन–पूजन ही के काम में होता हो। इस कमरे की दीवारों की सजावट के लिए वेद–मन्त्रों के उत्तम वाक्य, तथा साधु–सत्पुरुषों के उपदेशप्रद वाक्य सुन्दर अक्षरों में लिखकर लगाने चाहिए। जिस किसी दिशा में दृष्टि जावे उस स्थान में उपदेशप्रद के ही वाक्य नजर आने

चाहिए। इस कमरे के लिए चित्रों का महत्त्व भी उपदेश के लिए होता है, क्योंकि पढ़े-लिखे आदमी ही वाक्यों को पढ़ सकते हैं, परन्तु चित्रों को तो अनपढ़ मनुष्य भी समझ सकता है।

पूर्व दिशा की दीवार पर ऐसे चित्र रखने चाहिए कि जिनमें सूर्य का उदय, छोटे उत्साही बालकों की क्रीड़ा, प्रफुल्लित वृक्ष आदि के चित्र हों, अर्थात् जो उत्साह, जागृति और उदय की सूचना कर सकते हैं। यह इसलिए कि पूर्व दिशा जागृति की दिशा समझी जाती है।

दक्षिण दिशा की दीवार पर शूरवीर क्षत्रिय आदि के चित्र हों, जो अपने दाक्षिण्य व्यवहार से मृत्यु की परवाह न करते हुए जनता की उन्नति के लिए अपने आपको समर्पण कर रहे हों, मृत्यु का चित्र इसी ओर रखना चाहिए, जिसमें प्राणिमात्र की मृत्यु का स्पष्ट निर्देशन किया गया हो। अपने पीछे मृत्यु लगा है इस बात का स्मरण होवे, तथा परोपकार के कर्म करते हुए मरना चाहिए, यह भाव मन में स्थापना हो सके; ऐसे चित्र यहाँ लगाना उचित है।

पश्चिम दिशा की ओर ऐसे चित्र लगाने चाहिए, जिनमें शान्त समुद्र, पानी के रम्य नहर, नदी, तालाब आदि के दृश्य हों, धनधान्य, फल-फूल की समृद्धि आदि दिखाई गई हो। उत्तर दिशा की दीवार पर ऐसे चित्र लगने चाहिए जिनमें प्रयत्न से उन्नति प्राप्त करने का भाव स्पष्ट होता है, अधिक उच्च अवस्था प्राप्त करने के लिए सत्पुरुष जो-जो प्रयत्न करते हैं, उनकी सूचना इन चित्रों से मिल सके। साधु-सत्पुरुष, जो आत्मिक उन्नति में निमग्न रहते हैं, उनके चित्र यहाँ रखे जावें।

पाठक यहाँ ध्यान दें कि दक्षिण दिशा में क्षात्रतेज और मृत्यु दर्शाया गया है और उत्तर दिशा में ब्रह्मतेज और आत्मिक आनन्द दर्शाया है।

पूर्व दिशा में जागृति और पुरुषार्थ करने का उत्साह बताया है, तथा पश्चिम दिशा में निवृत्ति और आराम का प्रदर्शन किया है। आलंकारिक दृष्टि से ये दिशायें इन बातों की सूचनाएँ देती हैं, इस बात का ज्ञान विचार से पाठक जान सकते हैं। यदि छत पर चित्र लगाने हों तो ऐसे चित्र हों जिनमें उद्धार हो रहा हो। ऐसे उत्तम दृश्य साधारण घरों में छत पर नहीं रखे जा सकते। जो बड़े-बड़े धनिकों के प्रासाद होते हैं उनमें ही इस प्रकार के चित्र छत पर होना सम्भव है। दीवारों पर इन चित्रों के अतिरिक्त उत्तम-उत्तम स्मरणीय वाक्य, बोधदायक मन्त्र अथवा उपदेशप्रद शब्द लिखना चाहिए। तात्पर्य यह है कि कमरे के अन्दर आत्मिक उन्नति का वायु-मण्डल बनाने का यत्न करना चाहिए। वहाँ ऐसे कोई पदार्थ नहीं रखना चाहिए कि जो इस वायु-मण्डल को दूषित कर सकें।

इस देवघर के अन्दर पुस्तक, बर्तन तथा अन्य सामान उतना ही रखना चाहिए कि, जिसका उपयोग उपासना ही के काम में हो सकता है। स्नान करके धोये हुए स्वच्छ कपड़े पहनकर ही इस कमरे के अन्दर प्रवेश करना चाहिए। और प्रवेश करने के समय यह विचार

मन में दृढ़ रखना चाहिए कि, मैं पवित्र स्थान पर जा रहा हूँ, मेरे पास कोई अपवित्र विचार नहीं रहेगा, यहाँ मेरे आत्मा का परमात्मा के साथ योग होगा।

इस प्रकार की भावना रखकर ही कमरे के अन्दर प्रवेश करना चाहिए। मन की भावना का परिणाम बहुत विलक्षण होता है। कमरे के अन्दर जाते ही द्वार बन्द करके अपनी उपासना प्रारम्भ करनी चाहिए और इस समय कोई अन्य विरुद्ध धारणा करना उचित नहीं। क्योंकि विषम विचार सब आनन्द का घात करते हैं।

उक्त प्रकार का स्थान संध्या करने के लिए न मिलने की दशा में जो भी स्थान प्राप्त हो, उसी पर बैठकर संध्या करना योग्य है। अपने नियत समय का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। मेरा विश्वास है कि हर एक अवस्था का मनुष्य यदि प्रयत्न करेगा, तो अपने योग्य एकान्त का स्थान संध्या के लिए अपने घर में बना सकेगा। परन्तु प्रयत्न निश्चय रूप से करना चाहिए। शहरों के तंग मकानों में रहने वाले गरीब मनुष्यों के लिए बड़ी मुश्किल हो जाती है। पर ग्रामों में रहने वाले सुगमता से अपने स्थान बना सकते हैं। शहर निवासियों के लिए सार्वजनिक 'संध्या-मन्दिर' बनने चाहिए, जहाँ लोग जाकर संध्या कर सकें।

संध्या का समय और स्थान निश्चित होना उचित है। अपने भारत देश में प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त का समय सबसे अच्छा है, सायंकाल का सूर्यास्त का समय भी उत्तम है। आजकल सायंकाल में भ्रमण आदि के लिए जाते हैं, इसलिए सायंकाल का सूर्यास्त का समय बहुत करके लुप्त हो गया है। परन्तु उक्त दो समयों को छोड़ा न जाय तो बड़ा अच्छा है।

ब्रह्म मुहूर्त का समय इतना अच्छा है कि इस समय यम नियम आदि स्वयं सिद्ध होते हैं। इस समय में हिंसा कोई नहीं करता, दूसरे मनुष्य के साथ सम्बन्ध न होने के कारण असत्य बोलने का अवसर भी नहीं होता है, चोर भी अपनी चोरी से निवृत्त होते हैं, कामी पुरुष अपने कामोपभोग से निवृत्त होते हैं, इस प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि सब यम नियम स्वयं सिद्ध रहने के कारण सब वायु-मण्डल शुद्ध विचारों से परिपूर्ण रहता है। इसलिए यह समय सबसे उत्तम समझा गया है।

यदि किसी मनुष्य को कोई अन्य समय अनुकूल प्रतीत होता हो, तो वह अपनी अनुकूलता के अनुसार अपना समय और स्थान निश्चित करे और उसी समय में तथा उसी स्थान में बैठकर संध्या करे। आज सवेरे, कल दोपहर, परसों किसी अन्य समय में, इस प्रकार समय और स्थान का परिवर्तन करने से मन की वृत्ति चंचल होती है। स्थान व समय का नियम चित्त वृत्ति की स्थिरता करने में निःसंदेह सहायता देता है। सर्वत्र अनियम से ही चंचलता बढ़ती है।

यहाँ पाठकों को एक बात की सूचना देना आवश्यक है कि, नियमों के पालन करने के

अभ्यास से ही मनुष्यों की उन्नति हो सकती है अन्यथा नहीं। तमाखू, मद्य आदि दुर्व्यसन करने वाले मनुष्य अपने नियत समय ही दुर्व्यसन के पदार्थों को चाहते हैं। नियत समय पर अफीम न मिलने से अफीमबाज दुर्व्यसनी मनुष्य कैसे पागल हो जाते हैं, यह सबको विदित है। इससे ज्ञात हो सकता है कि समय के नियम का प्रभाव मन पर कितना है। दुर्व्यसनों के विषय में दुराचारी मनुष्यों के मन की जो अवस्था होती है वही अवस्था सदाचारी मनुष्यों की सत्कृत्यों के विषय में होती है क्योंकि दोनों के मनों के धर्म समान ही होते हैं।

ठीक समय पर संध्या करने की, निष्ठा और श्रद्धायुक्त, अभ्यास से उपासना में मन इतना जम जाता है: कि किसी कारण किसी दिन समय का अतिक्रमण हुआ, तो मन अस्वस्थ हो जाता है। संध्या के समय का अतिक्रमण होने से अकृत्रिम अस्वस्थता मन में उत्पन्न नियमों की परिपालना होनी ही चाहिए। मानसिक उन्नतिकी एक सीढ़ी है।

इसलिए हर एक मनुष्य को जहाँ तक हो सके वहाँ तक संध्या के समय और स्थान का नियम पालन करना योग्य है। जो मनुष्य सदा भ्रमण करते रहते हैं, उनके लिए स्थान का नियम करना अशक्य है, परन्तु वे समय के नियम का पालन तो कर ही सकते हैं। यदि प्रसंग वशात् समय का नियम टूटने लगेगा, तो एक–दो मिनट तक ठीक समय पर आँख बन्द करके 'गुरुमन्त्र' का जप करने से समय के निमय का पालन होने में बड़ी सहायता मिलती है। ऐसी अवस्था में समय प्राप्त होने पर पूर्ण संध्या की जा सकती है। रेल में अथवा सभा में बैठने के समय इस युक्ति से अच्छा निर्वाह हो सकता है।

शोक–संवेदना

(1) बड़े दुःख के साथ सूचित करते हैं कि जनवरी 16 तारीख को श्री प्रभातचन्द्र राय का देहावसान हो गया है। वे बनारस के थे और पुराने अच्छे साधकों में से एक थे। हम उनके सद्गति की कामना करते हैं।

(2) काँगड़ा निवासी श्री विजयपुरी जी का 11 फरवरी मौनी अमावस्या के दिन प्रयागराज में ही देहावसान हो गया है। वे भी प्रभु के प्रिय बालकों में से थे। उनके पीछे उनके दो पुत्र एक पुत्री व उनकी धर्मपत्नी शोभारानी हैं। प्रभु उन्हें इस दुःख को सहने की शक्ति देवें।

शोकाकुल
आश्रम के सन्तगण व गुरुभाई बहिन
श्री सिद्धगुफा सवांई, आगरा

जीवन तत्व साधन और उसके नियम

(ब्रह्मलीन योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

जीवन तत्व साधन करने के लिए कुछ नियम हैं जिनका जान लेना आवश्यक है। वे इस प्रकार हैं–

1. इन क्रियाओं को नित्य आदरपूर्वक करना चाहिए। कभी नागा नहीं करनी चाहिए।

2. इन क्रियाओं को करने के लिए जो समय का विभाज़न है उसी के अनुसार साधन करना चाहिए। जो क्रिया जितनी बार या जितने समय तक करने का विधान है, उसे उतने समय तक करना चाहिए। शुरू में थोड़े से आरम्भ करना चाहिए और धीरे-धीरे पूर्ण समय तक अभ्यास बढ़ा लेना चाहिए। कभी कम व कभी अधिक करने से पूर्ण लाभ नहीं होता है।

3. इन क्रियाओं को करते समय घड़ी रख लेना आवश्यक है, घड़ी से कुछ दिन अभ्यास कर लेने पर गिनती के आधार पर भी साधन किया जा सकता है।

4. यदि इन क्रियाओं को प्रातःकाल, मध्याह्न काल व सायंकाल अर्थात् नित्य तीन बार छः मास तक किया जावे तो मनुष्य का कायाकल्प हो जाता है और उनके सभी रोग जड़ मूल से नष्ट हो जाते हैं। यदि तीन बार साधन करने का अवकाश न मिले तो केवल प्रातःकाल करना चाहिए। इन क्रियाओं के करते समय लंगोट या कोपीन अवश्य पहन लेना चाहिए।

5. इन क्रियाओं को प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में करने से विशेष लाभ होता है। सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व साधन आरम्भ कर देना चाहिए। समय में परिवर्तन नहीं करना चाहिए। नित्य ठीक समय पर साधन आरम्भ कर देना चाहिए।

6. यदि कोई मनुष्य अन्य योगासनों के करने का अभ्यासी है तो उसे 'जीवन तत्त्व' करने के बाद कुछ देर शवासन से लेटकर आराम कर लेना चाहिए तदनन्तर अन्य आसन व्यायाम अथवा जप ध्यान आदि करना चाहिए।

7. प्रातःकाल शौच-स्नान के बाद इन क्रियाओं को करना चाहिए। बहुत अधिक सर्दी हो अथवा प्रातः स्नान करने में असमर्थ हों तो भीगे वस्त्र से शरीर को पोंछकर कपड़ा बदल लेना चाहिए।

8. शौच व दन्त-धावन के बाद जल नेति की क्रिया कर लेना बड़ा लाभदायक होता है। यह क्रिया किसी जानकार से सीख लेना चाहिए अथवा श्री सिद्धगुफा पर जाकर सीख

लेना चाहिए।

9. जीवन तत्व–साधन करने वालों को नाक से दूध पीना भी बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है। यह दुग्धपान साधन करने के बाद करना चाहिए। सोंठ मिला हुआ गुनगुना दूध नाक से पिया जाता है। यह क्रिया भी 'सिद्धगुफा' पर आकर सीखी जा सकती है। इससे सिर के समस्त रोग मिट जाते हैं और दूध भी पच जाता है। मुख से पीने के अनुपात में नाक से चौगुना लाभ होता है। स्नायु, मंडल को भारी बल मिलता है। मनुष्य के शरीर में अद्‌भुत परिवर्तन दिखाई देने लगता है। मुख–मण्डल दैदीप्यमान हो जाता है।

10. जीवन तत्व क्रियाओं को करने के बाद पेट की अग्नि तीव्र हो जाती है अतः उस समय कुछ खा लेना आवश्यक है। यदि संभव हो सके तो नासिका से सोंठ मिला दूध पी लेना चाहिए। अथवा खीर, दलिया, भीगे अंकुरित चने आदि पदार्थ खा लेना चाहिए। चाय आदि न लिया जावे तो अच्छा रहता है।

11. जीवन तत्व–साधन की छठवीं व सातवीं क्रियाओं का नाम बालमचलन व बच्चे का ध्यान है। जिस समय साधक इन क्रियाओं को करता है तो उसको बच्चे की स्पष्टाकृति दिखाई पड़ने लगती है और उसके मन में ऊँचा आह्लाद पैदा हो जाता है जिसके कारण वह सारे दिन बच्चों की तरह हँसता खेलता कूदता रहता है। इस प्रसन्नता के फलस्वरूप सभी प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोग दूर हो जाते हैं।

12. जीवन तत्व–साधन करने वालों को व्रत व उपवास नहीं करना चाहिए किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसे भक्ष्य अभक्ष्य आदि सभी पदार्थ खाते रहना चाहिए। सात्विक व पौष्टिक भोजन ग्रहण करना चाहिए और राजसिक व तामसिक भोजन का त्याग कर देना चाहिए। इसके सम्बन्ध में भगवान श्रीकृष्ण ने भी बताया है :

आयुः सत्त्व बलारोग्य, सुख प्रीति विवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा, हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः।।

—गीता 17/8

अर्थात्, आयु, उत्साह, बल, आरोग्य, सुख प्रीति बढ़ाने वाले, तथा रसदार चिकने; चिरस्थायी दिल पसन्द पदार्थ सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।

कट्वम्ल लवणात्युष्णतीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा, दुःख शोकामय प्रदाः।।

—गीता 17/9

अर्थ—कड़वे, खट्टे, नमकीन, अति गरम, तीक्ष्ण, रूखे, दाह करने वाले तथा दुःख, शोक और रोग देने वाले आहार रजोगुणी पुरुषों को प्यारे होते हैं।

यातयाम गतरसं पूति, पर्यूषितं च यत्।

उच्छिष्टमपि चामेध्यं, भोजनं तामसप्रियम्।।

—गीता 17/20

अर्थ—ठण्डा नीरस दुर्गन्धित, बासी, जूठा और अपवित्र आहार तमोगुणी पुरुषों को प्यारा होता है।

योगियों को केवल सात्विक भोजन करना चाहिए। भोजन के सम्बन्ध में आजकल बहुत भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। कौन—सा भोजन नीरोगता व स्वस्थता को बढ़ाता है इसको समझ लेना चाहिए।

'जीवन तत्त्व' साधन करने वालों को सात्विक आहार करना चाहिए। हमारा स्थूल शरीर अन्नमय कोश से बना है। जैसा हम अन्न खाते हैं वैसा हमारा मन बनता है। क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए, कितना खाना चाहिए और कब खाना चाहिए आदि बातों को जान लेना आवश्यक है। इस विषय को बताने के लिए हम एक कहानी के माध्यम से समझाने का प्रयास करते हैं:

'महर्षि चरक जब आयुर्वेद के सारे ग्रन्थ लिख चुके, सब प्रकार की विधियों का, सब प्रकार की औषधियों का, चिकित्साओं का वर्णन कर चुके और प्रचार भी कर चुके तो उनके मन में विचार आया कि चलूँ देखूँ लोग मेरे बताये मार्ग पर चलते भी हैं या नहीं। वे एक पक्षी का रूप धारण करके उड़े और वहाँ गये जहाँ वैद्यों का बाजार था। एक वृक्ष पर बैठ कर पक्षी ने ऊँची आवाज में कहा 'कोऽरुक' अर्थात् कौन रोगी नहीं है। एक वैद्य ने पक्षी को देखा, उसकी बात को समझा और कहा—जो 'च्यवनप्राश' खाता है वह रोगी नहीं है। एक और वैद्य बोला—जो 'चन्द्र प्रभा वटी' खाता है वह रोगी नहीं है। तीसरा वैद्य बोला—जो 'बंग भस्म' खावे वही नीरोगी है। चौथे वैद्य ने कहा—यह सब गलत बातें हैं। जब तक 'लवण—भास्कर' चूर्ण नहीं खाओगे तब तक पेट ठीक नहीं होगा। तब तक रोग बना रहेगा। चरक ने यह सब सुना तो दुखित हो गये, उन्होंने सोचा कि मैंने इतना बड़ा शास्त्र क्या इसलिए लिखा है कि मनुष्य के पेट को दवाइयों का गोदाम बना दिया जावे। मेरा परिश्रम क्या निष्फल गया? वे दुःखी होकर उड़े। कई स्थानों पर गये। हर स्थान पर उन्होंने कहा 'कोऽरुक'। कहीं से भी ठीक उत्तर नहीं मिला। अन्त में वे एक उजाड़ सुनसान स्थान पर एक सूखे वृक्ष की शाखा पर बैठ गये। उसके पास ही एक नदी बहती थी। नदी में नहाकर प्रसिद्ध वैद्य वाग्भट्ट महाराज बाहर आ रहे थे। चरक ने उन्हें पहचाना, और पुकार कर कहा 'कोऽरुक' वाग्भट्ट चलते—चलते रुक गये, आँखें उठाकर पक्षी की ओर देखा और समझ गये। वे बोले 'हित भुक्, मित् भुक्, ऋत् भुक्'। चरक इन शब्दों को सुनते ही वृक्ष के नीचे आ गये और पक्षी रूप छोड़कर वाग्भट्ट के सामने खड़े होकर कहा—वैद्यराज तुमने ठीक समझा है।'

परन्तु इस हित भुक्, मित भुक्, ऋत् भुक् का क्या अर्थ है इसे अब बतलायेंगे। जो मनुष्य

नीरोग रहना चाहे और अच्छे स्वास्थ्य का इच्छुक हो, उसे इन शब्दों को अपने घर की दीवाल पर लिखवा लेना चाहिए। इनका सदैव ध्यान रखे और इन उपदेशों का पालन करे। यह तीन शब्द हमारे आहार-नियमों को बताते हैं।

हित भुक्

भोजन हमारे शरीर के लिए हितकारी है, उसी को प्रयोग में लाकर हम स्वस्थ रह सकते हैं, इसी को हित भुक् कहते हैं। आज विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि स्वास्थ्य को कायम रखने के लिए किन-किन पदार्थों को खाना चाहिए और कौन-कौन भोजन त्याज्य हैं। आदर्श भोजन में 14 तत्व अवश्य होने चाहिए। ये तत्व निम्नलिखित हैं-

(1) आक्सीजन-टमाटर, किशमिश, मुनक्का, आलू आदि में पाया जाता है, यह मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ाने वाला है।

(2) हाईड्रोजन-हरे ताजे फल, साग, तरकारी दूध आदि में पाया जाता है। जीवन को शक्ति प्रदान करता है तथा भीतरी सफाई करता है।

(3) नाईट्रोजन-दूध, मट्ठा, सेम, आड़ू, बादाम आदि में पाया जाता है।

(4) कार्बन-आलू, अनाज, सूखे मेवे, अंगूर, सेब आदि में पाया जाता है। यह आक्सीजन में मिला रहता है और गर्मी बनाये रखता है।

(5) कैल्शियम-गेहूँ, दूध, नींबू, गोभी, मट्ठा आदि में पाया जाता है। यह हड्डियों को मजबूत करता है।

(6) फास्फोरस-नारियल, अनन्नास, जैतून आदि में पाया जाता है। यह रीढ़ तथा मस्तिष्क की रक्षा करता है।

(7) सल्फर-पातगोभी, किशमिश, मुनक्का, फूलगोभी आदि में पाया जाता है। यह विजातीय द्रव्य को शरीर से निकालकर बाहर करता है।

(8) सोडियम-मकोय आदि में पाया जाता है। कार्बन की अधिकता रोकता है तथा लार को बढ़ाता है।

(9) फ्लोरीन-गोभी, बकरी के दूध, नारियल आदि में पाया जाता है। यह मोटापे को कम करता है और शरीर को दुर्बल होने से बचाता है।

(10) क्लोरीन-लाल गाँठ गोभी, शलजम आदि में पाया जाता है। हड्डियों को दृढ़ बनाता है और आँखों की रक्षा करता है।

(11) लोहा-गाजर, पालक, चोकर आदि में पाया जाता है। यह खून को बढ़ाता है और रोगों से बचाता है।

(12) पोटैशियम-जैतून का सूखा फल, पिपरमेन्ट में पाया जाता है।

(13) मैग्नीशियम-सन्तरा, खजूर, नारियल आदि में पाया जाता है। यह खून को खारी

बनाता है, दाँतों को मजबूत बनाता है और गहरी निद्रा लाता है।

(14) सिलकिन–जई, जौ का दलिया, चावल, कच्चा दूध, आलू का छिलका चोकर आदि में पाया जाता है। यह बुद्धि को बढ़ाता है और शरीर को विषैले प्रभाव से बचाता है।

निम्नलिखित सात चीजें न्यूनाधिक में पाई जाती हैं। इनका उचित मात्रा में प्रयोग शरीर की शक्ति को स्थिर रखने के लिए जरूरी है। वैज्ञानिकों ने अन्वेषण करके यह बता दिया है कि किस पदार्थ में निम्न चीजें किस मात्रा में होती हैं और उनका प्रयोग किस मात्रा में करना चाहिए।

1. **प्रोटीन**–शरीर को बढ़ाने और बनाने वाले अंग दूध, घी, दही, अंकुरित चना, गेहूँ, दलिया से मिलता है।

2. **चिकनाई**–इसका काम गरमी और शक्ति पैदा करना है। जो दूध, घी, मक्खन व तेल से मिलता है।

3. **कार्बोहाइड्रेट**–इसका काम भी गर्मी व शक्ति देना है, जो अनाजों, मीठे फलों व खजूर में मिलता है।

4. **मिठास**–शक्कर, शहद, किशमिश, मुनक्का, अंगूर व अन्य मीठे फलों में मिलता है।

5. **नमक**–सब्जी व तरकारियों से जो नमक मिलता है वही असली नमक है।

6. **पानी**–शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पानी की बड़ी आवश्यकता है।

7. **विटामिन**–इनकी व्याख्या आगे की गई है।

विटामिन

नये विज्ञान में विटामिनों को बहुत ऊँचा दरजा दिया गया है। इनकी कमी से नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं। मुख्य विटामिन ए. बी. सी. डी. व ई. हैं।

विटामिए ए.

यह शरीर को बढ़ाता है, फेफड़ों को बल देता है, छूत के रोगों से बचाता है। आँखों में रोग होने से रोकता है। इसकी कमी से नाक, कान, आँख, फेफड़े व दाँत के रोग हो जाते हैं। यह दूध, घी, मक्खन, पनीर, पालक, बथुआ, गोभी, शलजम के पत्ते, हरी धनियाँ व सहजना की पत्तियों में पाया जाता है। च्यवनप्राश में भी विटामिन रहता है। हरी धनिया में यह इतना होता है कि एक सौ ग्राम हरी धनिया खाने से 22 घण्टे के लिए विटामिन ए. मिल सकता है।

विटामिन बी.

हृदय, मस्तिष्क व नसों को स्वस्थ व ताजा रखता है, भूख बढ़ाता है, रगों, पट्ठों और आँतों को शक्ति देता है। बेरीबेरी रोग को दूर करता है। इसकी कमी से मुँह का स्वाद बिगड़

जाता है। बदहजमी, दस्त, कब्ज व पेट का दर्द दूर होता है। यह गेहूँ, जई, मकई, सीठी चावल, सोयाबीन, मटर, दाल, चना, टमाटर, मूँगफली, अखरोट, खजूर, पपीता, अमरूद में पाया जाता है। जई, सोयाबीन व मूँगफली में इतना होता है कि 100 ग्राम खाने से 14 घण्टे के लिए विटामिन बी. मिल जाता है। जीवन तत्व साधन करने से यह विटामिन बहुत बढ़ जाता है और पेट, रगों व पट्ठों के अनेक रोग दूर होकर भूख लगने लगती है। खाना हजम होने लगता है और खून बढ़ने लगता है। विटामिन बी. के कई भाग हैं। अभी तक 12 का अनुसन्धान हो चुका है।

विटामिन सी.

रक्त को शुद्ध करता है। हड्डियों व दाँतों को शक्ति देता है। छूत के रोगों से बचाता है। इसकी कमी से भूख कम लगती है। खून सूख जाता है। साँस फूलने लगती है। दाँत व मसूड़ों में पीव पड़ जाता है। हाथ–पैरों में दर्द और जोड़ों में सूजन आ जाता है। यह सबसे अधिक आँवला में पाया जाता है। 100 ग्राम आँवला खाने से 100 घण्टे के लिए विटामिन सी. मिल जाता है। नींबू, नारंगी, नासपाती, टमाटर, अंगूर, सेब आदि फलों में भी पाया जाता है। जीवन तत्त्व साधन करने से यह विटामिन भी बढ़ जाता है।

विटामिन डी.

हड्डियों को दृढ़ तथा स्वस्थ रखता है। बच्चों को अत्यधिक लाभदायक है। इसकी कमी से कमजोरी, चिड़चिड़ापन तथा हड्डियों में निर्बलता आती है। चेहरा फीका पड़ जाता है। दौरे की बीमारी हो जाती है, सर्दी–जुकाम जल्दी–जल्दी होने लगता है। शरीर की बाढ़ रुक जाती है, बच्चों को सूखा रोग हो जाता है। हाथ–पैर दुबले हो जाते हैं। यह सूर्य की धूप में अधिकता से पाया जाता है। दूध, घी, गाजर, मेंथी, पपीता में पाया जाता है।

विटामिन ई.

स्त्रियों के बांझपन तथा गर्भपात को रोकता है। मनुष्य में सन्तान की उत्पत्ति की शक्ति देता है। इसकी कमी से पेशाब के स्थान पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यह गेहूँ तथा दूसरे अनाजों के अंकुरों में, हरे साग–पात, ताजे दूध, मक्खन, मटर के छोटे पौधे, शकरकन्दी और चोकर में पाया जाता है।

'जीवन तत्त्व' साधन करने वालों को विटामिन ए. बी. सी. डी. व ई. पर्याप्त मात्रा में मिलने लगता है। और उसका स्वास्थ्य ठीक हो जाता है। शक्ति व उत्साह में वृद्धि हो जाती है।

भोजन को नापने का एक उपाय बताया गया है जिसे कैलोरी कहते हैं। हर मनुष्य को चौबीस घंटे में 1500 से 3000 कैलोरी का भोजन करना चाहिए। विज्ञान ने यह बता दिया है कि किस भोजन के पदार्थ में कितने तत्त्व, गुण व कैलोरी हैं। अर्थात् किसी खाद्य पदार्थ को

एक छटाँक खाने से कितनी देर तक उसका प्रभाव रहता है। जैसे 100 ग्राम गेहूँ खाने से हमें ढाई घण्टे के लिए प्रोटीन, एक घण्टे के लिए कैल्शियम, 4 घण्टे के लिए फास्फोरस, 3 घण्टे के लिए लोहा, 12 मिनट के लिए विटामिन ए. और 8 घंटे के लिए विटामिन बी. 5 तथा 197 कैलोरी शक्ति मिलती है। प्रति 100 ग्राम खाद्य पदार्थों के गुण तत्त्व घण्टों के लिए दिये गये हैं जो किसी भी आहार पुस्तिका मे देखे जा सकते हैं और उसी के अनुसार हम अपने भोजन को नापकर जान सकते हैं कि हम भोजन करते हैं वह पर्याप्त गुण, तत्त्व व कैलोरी युक्त है या नहीं।

यदि हमारा भोजन 3000 कैलोरी तथा पर्याप्त गुण तत्त्व व विटामिन देने वाला है तो हम 'हित भुक्' के अनुसार भोजन करते हैं। अन्यथा हमको अपने भोजन में परिवर्तन करना चाहिए।

आश्रम समाचार

बड़े हर्ष का विषय है कि परम गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का 133वाँ प्राकट्य दिवस इस वर्ष 19, 20 व 21 अप्रैल को श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम में बड़े हर्ष व उल्लास के साथ मनाना निश्चित हो गया है। साथ ही श्री सिद्धगुफा ध्यान साधना कक्ष का भी उद्घाटन हो रहा है। अतः सभी गुरु भाइयों से निवेदन है कि उचित मार्गदर्शन (guideline) मास्क, उचित दूरी आदि का पालन करते हुए उत्सव में सम्मिलित हो सकते हैं। 21 अप्रैल को श्री राम नवमी उत्सव का भण्डारा भी होगा। मौसम तो ठीक ही रहेगा। अतः सभी आमन्त्रित हैं।

सोम, मंगल, बुद्ध का उत्सव रहेगा।

निवेदक

आचार्य योगी दासलाल जी महाराज व अन्य सन्तगण

श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम,

आगरा

—योग-सिद्धान्त—
कुण्डलनी महाशक्ति

सशैलवनधात्रीजां यथाऽऽधारोऽहिनायक:।
सर्वेषां योगतन्त्राणां तथाऽऽधारो हि कुण्डली।

जैसे पर्वत वनों सहित समस्त भूमियों के आधार शेषनाग होते हैं। तैसे ही सम्पूर्ण योग के तन्त्रों का यानी उपायों का आधार कुण्डलनी यानी आधार शक्ति है। भूमि यदि सम्पूर्ण एक ही है तो भी देश भेदों से बहुवचन का प्रयोग किया गया है। कुण्डली के बोध के बिना समस्त योगों के उपाय व्यर्थ हो जाते हैं।

सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च।।

सोई हुई कुण्डलनी जब गुरुजी की कृपा से जागृत हो जाती है तब सारे पद्म यानी षट्चक्र खिल जाते हैं और ब्रह्म ग्रन्थि विष्णु ग्रन्थि रुद्र ग्रन्थि ऐसे तीनों ग्रन्थियाँ भी खुल जाती हैं।

प्राणस्य शून्यपदवी तथा राजपथायते।
तदा चित्तं निरालम्बं तदा कालस्य वञ्चनम्।।

तैसे ही शून्य पदवी यानी सुषुम्ना नाड़ी प्राणवायु के लिए राज पथ बन जाती है। जैसे राजा राजमार्ग में सुख से निकलता है तैसे ही प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में सुख से चली जाती है। और तभी चित्त निरालम्ब यानी विषयों से विमुख हो जाता है। और तभी काल का भी प्रतारण होता है। अर्थात् योगी को मृत्यु का भय नहीं रहता है।

सुषुम्ना शून्यपदवी ब्रह्मरन्ध्रं महापथ:।
श्मशानं शाम्भवी मध्यमार्गश्चेत्येकवाचका:।।

सुषुम्ना, शून्यपदवी, ब्रह्मरन्ध्र, महापथ, श्मशान, शाम्भवी, मध्यमार्ग, ये सब एक अर्थ के वाचक हैं। अर्थात् इन सब शब्दों का सुषुम्ना नाड़ी अर्थ होता है :

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
ब्रह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्।।

तिससे यानी कुण्डली के बोध द्वारा ही षट्चक्रादिको का भेद हो जाता है। तिस कारण से समस्त प्रयत्नों द्वारा सच्चिदानन्द रूपी ब्रह्म द्वार यानी सुषुम्ना नाड़ी के मुख से सोयी हुई ईश्वरी यानी कुण्डली को जगाने के लिये मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिए।

(हठयोग प्रदीपिका से)

विचारों की सृष्टि

श्री विष्णुप्रसाद 'व्यास'

यह संसार द्वन्द्वमय है। प्रत्येक वस्तु अथवा पदार्थ के यहाँ दो पक्ष हैं। यथा–दिन है तो रात है, सुख है तो दुःख और जन्म है तो मरण भी है। यह द्विपक्षीय द्वन्द्व परस्पर विरोधी होते हैं। इसी प्रकार भक्ति और माया का भी एक द्वन्द्व है जो एक दूसरे के विरोधी पक्ष हैं। भक्तिपूर्ण विचारों से जहाँ मन को सुख, आनन्द और शान्ति प्राप्त होती है, वहाँ मायामय विचारों से उसे दुःख और पीड़ा की परेशानी होती है। अभिप्राय यह है कि सुख–दुःख का आधार मनुष्य के अपने कर्म और विचार ही हुआ करते हैं। यदि मनुष्य सही ढंग से अपने विचार और कर्मों का आधार भक्ति को बना लेता है तो सुख और शान्ति की प्राप्ति उसे निश्चित रूप से होती रहेगी। सुख और शान्ति ही मनुष्य को अभीष्ट होते हैं और उसका सारा प्रयास इसी की प्राप्ति के लिये हुआ करता है, पर भक्ति को या भक्ति–मार्ग को दृढ़ता से पकड़ कर आगे नहीं बढ़ाना चाहता। यदि वह ऐसा कर सके तो उसे शाश्वत शान्ति और पारमार्थिक सुख दुर्लभ नहीं रहेगा।

योग वाशिष्ट में भगवान श्रीराम को उपदेश देते हुए गुरुवर श्री वशिष्ठ जी कह रहे हैं कि सत्पुरुषों ने दो प्रकार की सृष्टि बताई है–एक विधाता द्वारा निर्मित और दूसरी मनुष्य के विचारों द्वारा निर्मित–विधाता द्वारा रचित सृष्टि तो किसी को सुख–दुःख नहीं देती, पर विचारों के आधार पर बनाई हुई कल्पना–सृष्टि में फँसकर ही मनुष्य सुख–दुःख का अनुभव किया करता है। उदाहरणार्थ–

एक व्यक्ति अंधेरी रात में यात्रा कर रहा था। मार्ग में एक पेड़ का ठूँठ (स्थाणु) खड़ा था। वास्तव में वह ठूँठ ही था जो निस्प्राण और निर्जीव था, मनुष्य का कुछ बिगाड़ नहीं सकता था, किन्तु यात्री मनुष्य ने अपनी कल्पना के आधार पर उसे भूत समझ लिया और भूत समझकर वह उससे भयभीत होने लगा। वह काँपने लगा और उसकी यात्रा में उसके चरण आगे बढ़ने से कतराने लगे। यह हुआ अपने विचारों की सृष्टि का परिणाम। यदि उसे यह विश्वास होता कि वह भूत नहीं किन्तु निर्जीव और निष्प्राण उजड़े हुए वृक्ष का एक तना मात्र है, तो ऐसी दशा में न उसे किसी प्रकार का भय होता और न भयभीत होने के कारण उसकी गति के चरण ही रुक जाते।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य अपने मन को निर्भयता के गुण से परिपूर्ण रखे ताकि भय और भ्रम का भूत उसमें प्रविष्ट ही न हो सके।

मन को निर्बल बनाने का कार्य केवल बातें बनाने से नहीं होगा, किन्तु इसके लिये अपने समूचे चरित्र को कर्त्तव्य परायण और पावन बनाने की कठोरतम् साधना करनी पड़ेगी। एक उदार तथा निर्मल मना महात्मा की कथा इस दिशा में हमारा समुचित मार्गदर्शन कर सकती है :

अरण्य में एक महात्मा अपना आश्रम बनाकर रहते थे। आश्रम पर सायं–प्रातः सत्संग चला ही करता था। एक दिन जब सत्संग चल रहा था तब उस देश का राजा भी जो धार्मिक विचारों का था–सत्संग में उपस्थित था। महात्मा जी का आश्रम आम के फलदार वृक्षों से शोभायमान हो रहा था। पेड़ों पर आम के फल भी लगे हुये थे। आम के फलों को नीचे गिराने के लिये दूर से किसी एक बालक ने एक पत्थर का टुकड़ा फेंका जो आम में न लगकर महात्मा जी के सिर में जा लगा, जिससे उन्हें गहरी चोट आई और सिर से रक्त बहने लगा। राजा ने अपने साथ के सैनिकों को पत्थर फेंकने वाले लड़के को अपने सामने प्रस्तुत करने का आदेश दिया। सैनिक दौड़े गये और उस बालक को पकड़ लाये। राजा ने कहा–''तुमने महात्मा जी को प्राण–घातक चोट पहुंचाई है इसलिये तुम्हें इसके लिये कठोर दण्ड दिया जायेगा।'' लड़के ने कहा–''महाराज पत्थर मैंने आम के फल गिराने के लिये आम के पेड़ को मारा था, महात्मा जी को नहीं, वह तो उनके सिर में अनायास ही जाकर लग गया है, मेरा अपना कोई अपराध नहीं है। राजा ने कहा–''इससे ज्यादा तुम्हारा क्या अपराध होगा कि तुम्हारी चोट से महात्मा जी को प्राणघातक चोट आई है। यहाँ हम सब इसको प्रत्यक्ष देख भी रहे हैं।'' राजा ने इसी बीच अपनी नजर महात्मा जी की ओर घुमाई और पूछा, महात्मा जी! कहिये इस बालक को क्या दण्ड दिया जाये?

महात्मा लोगों की अपनी दुनिया ही अनोखी होती है, जिसे पारमार्थिक दृष्टि रखने वाले ही जान सकते हैं। महात्मा जी ने शान्त भाव से मुस्कराते हुए कहा–''राजन् इस बालक द्वारा फेंका गया पत्थर अगर पेड़ पर लगता तो वह पेड़ इसे क्या देता?'' राजा ने विनम्रता से कहा–''महाराज् वह तो इसे अपनी डाल पर लगे मीठे–मीठे आम के फल ही देता।'' महात्मा बोले–''राजन्! जड़ वृक्ष भी पत्थर खाकर मधुर फल देता है तो मैं चेतन मनुष्य होते हुए भी इस बालक को दण्ड दिलवाऊँ, यह मेरी महान भूल होगी। राजन्! यदि मेरी ही इच्छा पूर्ति हो तो मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि आप इस बालक की झोली मीठे आमों से भर दीजिये। यदि मनुष्य होकर भी मैं इस बालक को क्षमा न करूँ तो पेड़ से भी निम्न श्रेणी का माना जाऊँगा।'' राजा ने महात्मा जी की इच्छा जान कर बालक को तदनुसार मुक्त कर दिया और उसे आम के मीठे फल देकर कृतार्थ कर दिया।

ऐसी होती है साधु पुरुषों के विचारों की सृष्टि। योगिराज भर्तृहरि जी ने ऐसे साधु–पुरुषों

के बारे में ही अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है—

मनसि वचसि काये पुण्य पीयूष पूर्णा–
स्त्रिभुवन मुपकारः श्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुण परमाणू– न्पर्वतीकृत्य नित्यं–
निज हृदिविकसन्तः सन्ति सन्तः क्रियन्तः।।

अर्थात्–जिनके तन, मन और वाणी में पुण्य रूपी अमृत भरा है, जो अपने उपकारों से तीनों लोकों को तृप्त करते है तथा जो दूसरे के परमाणु समान लघुतम् गुणों को पर्वत के समान बढ़ाकर अपने हृदय में प्रसन्न होते हैं, ऐसे सत्पुरुष जगत् में विरले ही होते हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से आपको विचारों की सृष्टि का कुछ परिचय मिल जाता है। राजा अपने विचारों और निर्णय के आधार पर ही जिस बालक को प्राण–घातक चोट पहुचाने के आधार पर दण्डित करने का निश्चय कर चुका था, उसी को अपने विचारों के अनुसार महात्मा जी ने उसे मुक्त कराकर पुरस्कृत करा दिया। योगी श्री दत्तात्रेय जी ने अपने विचारों के आधार पर ही अपने चौबीस गुरु धारण किये थे। पेड़ को भी उन्होंने अपना गुरु बनाया था, इसलिये कि उन्होंने उस वृक्ष से यह शिक्षा ग्रहण की थी कि जैसे वायु–धूप, वर्षा, सर्दी–गर्मी आदि ऋतुओं का प्रकोप सहन करके भी यह दूसरों को फल और छाया प्रदान करता है वही गुण ग्रहण करने का मैंने इसे देखकर संकल्प लिया है। अतः यह वृक्ष भी मेरा दीक्षा गुरु है।

फलदार वृक्ष फलों के भार में प्रायः नीचे झुक जाया करते हैं। इसी प्रकार भक्तिमान् पुरुष इन झुके हुये वृक्षों को देखकर विद्या, ज्ञान और साधन सम्पन्न होने पर भी अधिक नम्र और विनयशील हो जाया करते हैं। ये गुण भी श्री दत्तात्रेय ने वृक्षों को अपना गुरु बनाकर उनसे ग्रहण किया था।

इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य, प्रभु की इस सुनियोजित और सुरम्य सृष्टि को देखकर अपने विचारों की सृष्टि को भी सुन्दर, सुरम्य और सुखदायक बना सकता है बशर्ते कि वह श्रद्धा और विश्वास के साथ इसका अध्ययन और निरीक्षण करने का प्रयत्न करता रहे।

योग–दर्शन के अनुसार मनुष्य अपनी वैचारिक सृष्टि को सुन्दर और सुखदायक बनाने के लिये क्रिया–योग को अपना आधार बना सकता है, जिसमें तपः, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान उसकी साधना के अपने मुख्य आधार होंगे।

भृगु-योग

—एक साधक

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सब जातियों और वर्णों के लोग भृगु-योग के अधिकारी हैं। किन्तु इस योग के जानने वाले का यह कर्त्तव्य है कि वह कम से कम एक व्यक्ति को अवश्य इसका उपदेश दे दे।

इस योग साधन का संकल्प करते समय सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, चराचर सम्पूर्ण जगत् को साक्षी रखकर यह व्रत लेना चाहिए और फिर अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए।

अष्टांग-योग के प्रथम और द्वितीय अंग यम और नियम के समान इस योग में भी सर्वप्रथम सद्‌गुण, सद्‌भाव की प्राप्ति का अभ्यास किया जाता है, जिसके बिना साधना से लाभ नहीं हो सकता। इस भृगु-योग के कुछ मुख्य नियम इस प्रकार हैं :

(1) **सत्य-पालन**—इस योग में सत्य प्रथम और प्रधान है। सत्य वचन, सत्य कर्म और सत्य भाषण तीनों की आवश्यकता है। सत्य का अभ्यास केवल बड़ी-बड़ी बातों के विषय में ही नहीं, बल्कि छोटी से छोटी बातों में भी होना चाहिए। छोटी-छोटी बातों में हम लोग असावधान रहकर प्रायः सत्य का नाश करते हैं। उदाहरणार्थ, जब कोई पूछता है कि क्या समय है, तब उस समय यदि दस बजकर दस मिनट भी हुआ रहता है तब भी हम लोग प्रायः यही उत्तर देते हैं कि दस बजे हैं। किन्तु यह उत्तर असत्य है। हमें कहना यह चाहिए कि मेरी या अमुक घड़ी में दस बजकर इतने मिनट हुए हैं। यदि किसी को कोई वचन देना हो तो या तो शर्त के साथ वचन देना चाहिए, जैसे सुयोग होने पर और कोई बाधा न आने पर ऐसा होगा अथवा किया जायेगा-ऐसा कहना चाहिए यदि बिना शर्त के कोई वायदा किया जाये अथवा वचन दिया जाये तो समय आने पर भी और हानि को सहन करके भी अपने वाक्य की सत्यता की रक्षा अवश्य करनी चाहिए, भले ही वह बात साधारण ही क्यों न हो। इस प्रकार सब प्रकार से, सब अवस्थाओं में सत्य का पालन करने से साधक को वाक्-सिद्धि प्राप्त होती है, जैसा कि योग सूत्र में वचन है। इस तरह के सत्यवादी सिद्ध पुरुष का संकल्प भी सत्य हो जाता है। पंजाब के एक महात्मा ने एक बार एक बड़े चट्टान को पर्वत पर से नीचे गिरते हुए देखा और तुरन्त मन में संकल्प किया कि वह ऊपर ही रुक जाये। बस, वह पत्थर ऊपर ही रुक गया। वह आज भी पंजाब साहब के नाम से मौजूद है। ऐसे संकल्प के सत्य होने के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं।

(2) **सरलता**—भीतर और बाहर का भाव तथा व्यवहार बालक के समान सर्वथा सरल

और निष्कपट होना चाहिए। इसको आर्जव धर्म कहते हैं।

(3) **ईश्वर को सर्वकर्मार्पण**—प्रारब्ध, संचित, क्रियमाण, सुकर्म, विकर्म आदि अपने सब कर्म ईश्वर को अर्पण करने चाहिए। जो कर्म किया जाये, चाहे वह व्यावहारिक, पारमार्थिक अथवा अन्य किसी प्रकार का ही क्यों न हो, ईश्वरार्पण ही करना चाहिए।

(गीता 9/27)

यह सर्वकर्मार्पण तभी सम्भव है जब शरीर, परिवार, धन–सम्पत्ति, व्यवसाय आदि सबको अपना न समझ, उनके प्रति ममता का त्याग करके उन्हें ईश्वर की थाती के रूप में देखा जाये। इस प्रकार करने पर धनोपार्जन, परिवार पालन आदि कर्म ईश्वर के ही हो जाते हैं। अभ्यास का यही तात्पर्य है कि उससे जो कुछ प्राप्त हो, वह सब ईश्वरार्पण हो अर्थात् ईश्वर–सेवा की भाँति लोक सेवा में ईश्वर के निमित्त व्यवहृत हो।

(4) **सर्वत्र ईश्वर–दर्शन**—चराचर, नाम–रूपात्मक दृश्य मात्र को ईश्वर का ही रूप समझना चाहिए, जो वस्तुतः उनके अन्दर चेतन रूप से वर्तमान है। ऐसी दृष्टि रखकर किसी के भी सामने आने पर उसको भक्ति भाव से मन ही मन प्रणाम करना चाहिए।

(श्रीमद्भा. 11/2/41 और 29/16)

यथार्थ सत्य यही है कि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है, कोई स्थान, वस्तु अथवा काल ऐसा नहीं जिसमें वह व्याप्त न हो। संसार में केवल ईश्वर ही सत्य, नित्य और सर्वत्र व्याप्त है। इस विश्व में ईश्वर ही सत्य, नित्य और सर्वत्र व्याप्त है। इस विश्व में ईश्वर सत्त्वगुण के रूप में जैसे अन्न आदि के रूप में पालन करता है, रजोगुण द्वारा जैसे बैल, घोड़ा, रेल आदि के रूप में कर्म करता है और तमोगुण द्वारा जैसे सर्प, व्याघ्र, आदि के रूप में संहार करता है। इस कारण संहार की मूर्ति को भी ईश्वर मानकर नमस्कार करना चाहिए, किन्तु साथ ही उससे पृथक् भी रहना चाहिए, क्योंकि संहार वांछनीय नहीं है।

इस भाव का दृढ़तापूर्वक अभ्यास करने पर ईश्वर दर्शन होता है। पहले ज्योति दिखाई पड़ती है, जिसके वर्ण से अपने गुण का पता चलता है। श्वेत और पीत वर्ण सत्त्वगुण के सूचक हैं, लाल रजोगुण का नील वर्ण तम का सूचक है। उसके बाद साधक अपने इष्ट को उस ज्योति में इस प्रकार से क्रमशः देखता है—(क) हँसते हुए, (ख) बातचीत करने के लिए प्रस्तुत अवस्था में अर्थात् उनके ओष्ठ में गति मालूम होती है, (ग) अभय–मुद्रा में अर्थात् एक हाथ की हथेली को साधक की ओर दिखाते हुए, (घ) कर–स्पर्श द्वारा प्यार करते हुए, (च) परम ज्योति, (छ) पृथ्वी–कम्प और (ज) पूर्ण एकत्व।

(5) ईश्वर पर निर्भरता और निष्काम दास्य–भाव से कर्म करना—जैसे सच्चे निष्काम सेवक का उद्देश्य केवल अपने प्रभु की सेवा करना होता है और वह अपनी व्यक्तिगत उन्नति

की तनिक भी परवाह नहीं करता, प्रभु पर ही पूर्ण रूप से निर्भर रहता है, वैसे ही साधक को ईश्वर पर पूर्ण निर्भर रहना चाहिए। (गीता 11/55)

साधक का अपने हृदय में और सर्वत्र ईश्वर को व्याप्त जानकर जो कर्म करना चाहिए, से केवल उसके निमित्त करना चाहिए। भोजन को पहले उसे समर्पित करके पीछे उच्छिष्ट प्रसाद की भांति ग्रहण करना चाहिए, वस्त्र आदि को भी निवेदित करके प्रसाद की भांति व्यवहार करना चाहिए। जो कुछ चीज खरीदनी हो, उसे ईश्वर के लिए, उसकी पूजा की चीज समझकर खरीदना चाहिए, जो कुछ व्यवसाय करना हो वह भी उसी के निमित्त करना चाहिए। कहने का मतलब, जो कोई काम हो, उसे भगवान् का ही समझकर करना चाहिए। अपनी चीज को भी ईश्वर की सम्पत्ति जानकर उसकी रक्षा करनी चाहिए। इस तरह का साधक अपने भाग्य के निमित्त न तो ज्योतिष की सहायता लेता है और न शान्ति के लिए पुरश्चरण आदि करता है। रामायण का वचन है–

मोर दास कहाइ नर आसा।

करइ तो कहहु कहा बिस्वासा।

(6) सतत और सब कामों में ईश्वर–स्मरण–साधक को सतत ईश्वर–स्मरण करना चाहिए। यदि ऐसा न हो सके तो प्रत्येक कार्य के आदि, मध्य और अन्त में ईश्वर–स्मरण अवश्य कर लेना चाहिए–

'आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्र गीयते।'

(7) विश्वव्यापी आकाश को पितृ भाव से और विश्वव्यापिनी पृथ्वी को मातृ भाव से प्रणाम करना चाहिए।

(8) सम्पूर्ण भौतिक जगत् को अपने साथ एक और युक्त देखना चाहिए, फिर स्थूल और सूक्ष्म, अन्तरिक्ष के अदृश्य जगत् को भी मानसिक दृष्टि से अपने साथ एक युक्त और अभिन्न जानना चाहिए तथा वर्तमान स्थूल जगत्, अन्तरिक्ष और अध्यात्म–इन तीनों लोकों को आत्मा की दृष्टि से अपने साथ एक, युक्त और भिन्न जानना चाहिए। इस ज्ञान के लिये सबसे प्रेम, मैत्री, दया आदि का भाव मन, वचन, कर्म से रखना चाहिए।

(9) मन, वचन और कर्म से सबके साथ पूर्ण अहिंसा का बर्ताव रखना चाहिये। इससे ज्ञान–दृष्टि मिलती है जिससे यथार्थ प्रेम, महाभाव, श्रेय और निःश्रेयस की प्राप्ति होती है।

(10) प्रातःकाल शय्या से उठते ही पहले माता–पिता, फिर विद्यागुरु, फिर आचार्य और फिर गुरु की वन्दना करनी चाहिए। उसके बाद जगत्पति श्रीब्रह्मा को गुरु रूप में, फिर विश्व के पालनकर्ता विराट् श्रीविष्णु को गुरु–भाव से और फिर उत्तम निर्माण के निमित्त संहारकर्ता श्रीमहेश्वर को गुरु–भाव से वन्दन करना चाहिये। उसके बाद परम परात्पर सबके परम

कारण परब्रह्म की गुरु रूप में वन्दना करनी चाहिए। उसके बाद सृष्टि मात्र के कल्याण की कामना करनी चाहिए। इसके लिए वचन है :

1. **मातृपितृभ्यां नमः। 2. शिक्षकेभ्यो नमः। 3. आचार्येभ्यो नमः। 4. श्रीगुरवे नमः। और**

5. **गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु र्गुरुर्देवो महेश्वरः।**
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।
सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वेभद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविंद उत्तिष्ठ गरुडध्वज।
उत्तिष्ठ कमलाकांत त्रैलोक्यमंगलं कुरु।

इस भृगु–योग की साधना उपासना सम्मिलित राजयोग के समान है, जिसका थोड़ा–सा दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है–

(1) रात्रि के समय अंधकार में दृष्टि को एकाग्र करना चाहिए।

(2) **शक्ति–संचार**–अपने इष्ट के चित्र को इस तरह रखना चाहिये कि वह ठीक हृदय के सामने पड़े और फिर उसके समक्ष खड़े होकर अपने नेत्रों को इष्ट के चरण–कमलों में गड़ा देना चाहिए। अपने शरीर को लोहे के समान कड़ा कर लेना चाहिये। फिर अपने दोनों हाथों को दोनों बगल में नीचे गिरे हुए रखकर वहाँ से फिर धीरे–धीरे ऊपर उठाना चाहिए। यह सब करते समय इष्ट के मंत्र का जप भी करते रहना चाहिये। दोनों हाथों को पृथक्–पृथक् दोनों ओर उठाकर अपने मस्तक के ऊपर जहाँ तक सम्भव हो, ले जाना चाहिये। उसके बाद ऊपर दोनों हाथों को मिलाकर साथ ही अपने सामने नीचे उतारना चाहिये। जब दोनों हाथ हृदय के समक्ष आ जायें, तब सम्पूर्ण शरीर को दोनों हाथों के साथ, एकदम ढीला कर देना चाहिये।

स्मरण रहे, इतने समय तक दोनों हाथों के समेत सारा शरीर लोहे के समान कठिन रहना चाहिए और दोनों सटे हुए हाथों को इस भावना के साथ हृदय के सामने लाना चाहिये कि इष्टदेव के चरण–कमल के अमृत का संचार हमारे हृदय में हुआ है। फिर इष्टदेव के चित्र को नमस्कार करके आसन पर बैठ जाना चाहिए।

(3) **अम्बुज–मुद्रा**–दोनों हाथ की अंगुलियों को पृथक्–पृथक् करके अर्धवृत्त के समान बना लेना चाहिए और एक हाथ की प्रत्येक अंगुली के सामने दूसरे हाथ की समान अंगुली रखनी चाहिए। किन्तु दोनों हाथ की अंगुलियों को सटाना नहीं चाहिए, अंगुलियों के बीच प्रायः आधी इंच का अन्तर रहना चाहिये। इस तरह हाथों को रखकर यथा साध्य इष्ट के मंत्र का

जप करना चाहिए।

(4) **दृष्टि–पूजा**–अपने इष्ट के चित्र के चरणों में दृष्टि को एकाग्रता के साथ संनिविष्ट करके इष्ट–मंत्र का जप करना चाहिये। उसके बाद अपने हृदय में इष्ट की मूर्ति के चरणों में ध्यान लगाकर मंत्र–जप करना चाहिए। तत्पश्चात् इष्ट के चित्र में दृष्टि संनिविष्ट कर बिना मंत्र के ध्यान करना चाहिये और उसके बाद पुनः हृदय में इष्ट के चरणों का बिना मंत्र के ध्यान करना चाहिये।

(5) **नाभि में दृष्टि–पूजा**–नाभि के बाहरी भाग में दृष्टि लगाकर सौ बार इष्ट मंत्र जपना चाहिये, इससे न अधिक जपना चाहिये न कम। संख्या ठीक रखने के लिए प्रत्येक मंत्र–जप के बाद संख्या भी कहते जाना चाहिये। जैसे, यदि मंत्र राम हो तो राम एक, राम दो, राम तीन इत्यादि, इस तरह सौ तक कहना चाहिए। उसके बाद नाभि के सामने के मेरुदण्ड के बाहरी भाग में दृष्टि जमाकर पचीस बार मंत्र जप करना चाहिए। उसके बाद नाभि के भीतर फिर सौ और तत्पश्चात् नाभि के भीतरी भाग के सामने मेरुदण्ड के अन्दर जहाँ मणिपूर चक्र है, वहाँ पच्चीस बार जप करना चाहिये। इस साधना से पाक शक्ति की भी वृद्धि होती है।

(6) **षट्चक्रबेध**–यह बेध मेरुदण्ड के छः चक्रों में क्रमशः केवल चिन्तन द्वारा होता है। सबसे पहले प्रथम चक्र मूलाधार में, जो मेरुदण्ड के नीचे लिंग और गुदा के बीच में भीतर है, अन्तर्दृष्टि करनी चाहिए और 'एकाय नमः' अथवा एक का उच्चारण करना चाहिए। फिर दूसरे चक्र स्वाधिष्ठान में, जो लिंग के सामने भीतर मेरुदण्ड में है, अन्तर्दृष्टि रखकर 'द्वितीयाय नमः' अथवा दो कहे।

इसी प्रकार नाभि के सामने के चक्र मणिपुर में तीन अथवा 'तृतीयाय नमः' हृदय के सामने अनाहत में 'चतुर्थाय नमः' अथवा पाँच, भ्रूमध्य के भीतर आज्ञा चक्र में, 'षष्ठाय नमः' अथवा छः कहना चाहिये। फिर वहाँ से लौटने में आज्ञा चक्र में ही 'सप्तमाय नमः' अथवा सात कहना चाहिये, विशुद्धि में आठ, अनाहत में नौ, मणिपूर में दस, स्वाधिष्ठान में ग्यारह और मूलाधार में बारह कहना चाहिये। अर्थात् प्रत्येक चक्र में चक्र की संख्या एक, दो अथवा एकाय, द्वितीयाय अथवा एकाय नमः, द्वितीयाय नमः इत्यादि कहना चाहिये। इस तरह जितनी बार इच्छा हो चिन्तन और संख्या का उच्चारण करके ऐसी भावना करनी चाहिये कि चक्र–बेध हो गया। कुछ दिनों के बाद मेरुदण्ड फूटेगा और चींटी के चलने के समान अनुभव होगा। फिर मालिश होने के समान अनुभव होगा और वायु चक्रों को बेधकर ऊपर को उठेगी। फिर आनन्द का अनुभव होगा।

(7) **अजपा–जप**–श्वास उठने पर बाहर और नीचे से वायु भीतर और उदर में आती

है और फिर वह फिरकर बाहर और नीचे जाती है। यह श्वास–प्रश्वास की गति सदा होती रहती है। अजपा–जप यह है कि जब श्वास में पूरक हो यानी वायु ऊपर और भीतर जाये, तब 'सो' मंत्र का उसके द्वारा उच्चारण होता हुआ समझना चाहिए, जैसा कि स्वयं होता रहता है।

फिर जब थोड़ी देर बाद ठहरकर श्वास वापस आवे अर्थात् बाहर और नीचे जाये तब 'अहम्' पर जिसका स्वाभाविक उच्चारण होता है, ध्यान देना चाहिये। फिर पूरा रेचक हो जाने पर बहुत थोड़ी देर ठहरकर उसके पूरक पर ध्यान देना चाहिए, जब कि 'स' का उच्चारण होता है। इस प्रकार जब तक इच्छा हो, इस 'सोऽहम्' के अजपा–जप पर जो स्वाभाविक होता रहता है, ध्यान देना चाहिये। उसके बाद मूलाधार से जो वायु उठकर आज्ञा चक्र तक भीतर में जाती है, उस पर ध्यान देना चाहिए।

जब वायु मूलाधार से उठकर आज्ञा चक्र तक जाती है, उस समय 'सो' के जप का ध्यान करना चाहिए और बहुत थोड़ी देर ठहरकर जब वायु फिर आज्ञा चक्र से चार चक्रों को स्पर्श करती हुई मूलाधार में जाती है, उस समय 'अहम्' जप का ध्यान करना चाहिए। फिर वहाँ बहुत थोड़ा ठहरकर श्वास ऊपर की ओर बीच के चक्रों को स्पर्श करता हुआ आयेगा, उस समय 'सो' का जप करना चाहिये। इस प्रकार भीतर चक्रों में श्वास–प्रश्वास के आवागमन के साथ 'सोहम्' का जप करना चाहिये। फिर भ्रूमध्य के भीतर अग्र भाग से श्वास को लेकर भ्रूमध्य के पीछे के भाग को स्पर्श कराकर ऊपर सहस्त्रार में बहुत थोड़ी देर ठहरकर उसे वहाँ से भ्रूमध्य के पश्चाद्भाग से लाते हुए उसके अग्रभाग में समाप्त कर देना चाहिये, जिससे 'अहम्' का जप होता है। फिर वहाँ थोड़ी देर ठहरकर पहले की भांति भ्रूमध्य के पश्चात् भागों को स्पर्श कर सहस्त्रार में ले जाना और वहाँ थोड़ा ठहरकर फिर नीचे उसी क्रम से लाना चाहिये। यह अजपा–जप का तीसरा प्रकार है। इस प्रकार तीनों प्रकार का अजपा–जप यथाशक्ति करना चाहिये।

(8) **महामुद्रा का अभ्यास**—हठयोग के ग्रंथों में महामुद्रा का, जो एक प्रकार का आसन है, वर्णन है, उसे जानकर अभ्यास करना चाहिये। यह पश्चिमोत्तान आसन के समान है। व्यायाम वाले इसे व्यायाम कहते हैं। यदि महामुद्रा न हो सके तो उसके बदले इष्ट का ध्यान–जप हृदय में करना चाहिये।

(9) **सोलह आधारों में दृष्टि**—ये सोलह आधार पैर के अंगूठे से लेकर सहस्त्रार तक हैं। साधक को चिन्तन करना चाहिये कि प्राण वायु पैर के अंगूठे से चलकर बीच के आधारों को क्रमशः स्पर्श करती हुई सोलहवें आधार सहस्त्रार में पहुँची और वहाँ से लौटकर बीच में आधारों को क्रमशः स्पर्श करती हुई पुनः अंगूठे में आयी। इस प्रकार यथा साध्य कई बार

चिन्तन करना चाहिये। इसका उत्तम परिणाम यह होता है कि इस साधना से और सत्वादि सद्भाव के अभ्यास से सत्वगुण की वृद्धि होती है और मृत्यु के समय प्राण वायु के ब्रह्मरंध्र के द्वारा निकलने में सुगमता होती है। ब्रह्मरंध्र द्वारा प्राण के प्रयाण करने से जीवात्मा ऊर्ध्व लोक में जाता है।

षोडश आधार इस प्रकार है–(1) पैर का अंगूठा, (2) गुल्फ, (3) जा, (4) जंघा, (5) ऊरु, (6) नितम्ब, (7) मूलाधार–चक्र, (8) स्वाधिष्ठान, (9) मणिपूर, (10) अनाहत, (11) विशुद्ध, (12) आज्ञा, (13) तालु के ऊपर ललना नाड़ी, (14) हंस चक्र–जो गुरु पीठ है, (15) द्विदल–कमल और (16) सहस्त्रार।

यहाँ तक साकारोपासना की साधना हुई। किन्तु जो लोग निर्गुण–मार्ग का अनुसरण करना चाहते हैं, उन्हें नीचे की साधना करनी चाहिये। सगुणोपासक भी इस साधना को कर सकते हैं।

(10) आँख बंद करके भ्रूमध्य में बिना आँख को दाबे ध्यान करना चाहिये। कुछ दिनों तक ध्यान करने पर तीन अथवा पाँच बिन्दु दिखायी देंगे, जिनमें एक कृष्ण और बाकी श्वेत हैं, ऐसी भावना करनी चाहिये। बिन्दु के भीतर प्रवेश करने पर भीतर का भूताकाश दिखायी पड़ेगा। उसके बाद तृतीय नेत्र प्रकट होगा, जो ज्योति से घिरा रहेगा। यह ज्योति मकड़ी के जाल के समान होती है और काँपती रहती है।

शुल्क समाप्ति की सूचना

वर्ष 2020 का सिद्धयोग का वार्षिक शुल्क मार्च के अंक के साथ ही समाप्त हो जाता है अतः पाठकों से आग्रह है कि आगामी वर्ष 2021–2022 के लिये 200 रु. वार्षिक शुल्क कार्यालय में जमा करके रसीद प्राप्त कर लेवें।

पिछले वर्ष कोरोना महामारी के कारण बहुत ही कम सदस्य बन पाये थे अतः इस वर्ष सभी साधक/गुरुभक्त शुल्क जमा करके सिद्धयोग के अमूल्य लेखों को पढ़कर अमल में लायें व जीवन में आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करें।

आजीवन शुल्क 1000रु.

सम्पादक

सिद्धयोग मासिक

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।
योगेश्वर प्रभु रामलाल के पद नख हृदय धरूँ।।

श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज ने, कितने पतितों को तारा।
जिसने भी यहाँ शीश झुकाया, प्रभुजी का मिला सहारा।।
अभय बनाया पावन-रज ने, महिमा कहाँ लौं कहूँ।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।।

जीवन की बुझती ज्योति, यहाँ आकर ज्वलित हुई है।
मुरझी हुई जीवन आशायें, इस आँगन में महक उठी हैं।।
श्री गुरुवर के " रज प्रसाद " की सुध ही न बिसरूँ।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।।

मानव सब सारे प्रयत्नों को कर, हाथ नहीं कुछ पाता है।
तब प्रभु के चरणों की पावन-रज से, आशा की किरण जगाता है।।
प्रभु रामलाल की अमर धरोहर, अपने शीश धरूँ।
श्री सिद्ध गुफा की पावन-रज को, सत्-सत् नमन करूँ।।

●●●

...की का प्रतिपादक
...ी हिन्दी मासिक

श्री ...योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

श्री/सुश्री

विचार की शक्ति

विचार की शक्ति की वे तरंगें जिनके साथ संकल्प शक्ति का प्रबल बल विद्यमान होता है, मनुष्य के मस्तिष्क से निकलकर रुकावट और विरोध के होते हुए भी उस समय तक निरन्तर दौड़ती रहती हैं, जब तक उनको कोई ऐसा मन न मिल जाए, जो उस विचार के साथ सहानुभूति और अनुकूलता न रखता हो।

यदि आप घृणा, धिक्कार या शत्रुता मिश्रित विचार संकल्प-शक्ति के साथ किसी के पास भेजेंगे तो वे जीवित शक्ति बन जायेंगे और वे तब तक बराबर दौड़ते रहेंगे, जब तक कि वे उसके समीप तक न पहुँच जाएँ, जिसके लिए वे भेजे गये हैं। इसी प्रकार प्रेम और अच्छी नीयत प्रत्येक विचार भी संकल्प-शक्ति का सहारा लेकर उस तक पहुँचकर ही दम लेता है, जिसके लिये वह प्रेरित किया गया है।

-योगीसियाराम

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. ...
...प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) से
प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14506. सम्पादक : आचार्य ...